

## शेष पर्यटन

### प्रकरण दसवाँ ।

#### शेष पर्यटन ।

पाँचवें प्रकरण के अन्त में हम अपने नायक हीरविजयसूरि को अभिरामबाद में छोड़ आये हैं । अब हम उनके शेष पर्यटन का हाल लिखेंगे ।

वि. सं. १६४२ (ई. स. १५८६) का चौमासा उन्होंने अभिरामबाद में बिताया था । उसके बीच में उन्हें गुजरात में जो भयंकर उपद्रव उपस्थित हुए थे उन्हें शमन कराने के लिए-एक बार फिर फतहपुरसीकरी जाना पड़ा । गत प्रकरण में इस बात का उल्लेख हो चुका है । अभिरामबाद से विहार करके सूरिजी मथुरा और गवालियर की यात्रा कर आगे में आये । पाँचवें प्रकरण में यह बात लिखी जा चुकी है । उनके आगमन से आगे में धर्म के अनेक उत्तमोत्तम कार्य हुए । वहाँ से विहार कर सूरिजी फिर मेडते पधारे । फाल्नुन चातुर्मास उन्होंने मेड़ताही में बिताया । वहाँ से विहार कर नागोर गये । वहाँ सूरिजी का बहुत सत्कार हुआ । संघवी जयमल भक्तिपूर्वक सूरिजी को वाँदने के लिए सामने गया । मेहाजल महता ने भी सूरिजी की बहुत भक्ति की । यहाँ जैसलमेर का संघ भी सूरिजी की वंदना करने के लिए आया था । भाँडण कोठारी उनमें मुख्य था । इस संघ ने सूरिजी की सोनैया से पूजा की । सं. १६४३ का चौमासा खत्म होने पर सूरिजी पीपाड़ पधारे । सूरिजी के पधारने की खुशी में वहाँ के ताला नामक एक पुष्करण ब्राह्मण ने बहुत सा धन खर्चा । वहाँ से सूरिजी सीरोही पधारे । गुजरात से विजयसेनसूरि सूरिजी के सामने आते थे, वे भी यहाँ मिले । दोनों आचार्यों के एकत्रित होने से लोगों में अपूर्व उत्साह फैला । दोनों आचार्य सीरोही में थोड़े ही दिन तक एक साथ रहे; क्योंकि कई अनिवार्य कारणों से विजयसेनसूरि को

सूरिजी की आज्ञा से सीरोही छोड़कर गुजरात में तत्काल ही जाना पड़ा था । सीरोही में हीरविजयसूरि के बिराजने से और उनके उपदेश से शासनोन्नति के अनेक उत्तमोत्तम कार्य हुए । उस समय सीरोही के श्रावक इतने उत्साह में थे कि उन्होंने सूरिजी को आबू की यात्रा कराकर वापिस सीरोही चलने की साग्रह, भक्तिपूर्वक प्रार्थना की और सीरोही में ले जाकर उनको चौमासा करवाया । (वि. सं. १६४४) सूरिजी को सीरोही में चौमासा कराने के लिए राय सुलतान और पूँजा महता का अत्यंत आग्रह था । सीरोही में भी अनेक दीक्षामहोत्सव और अन्यान्य धर्मोन्नति के कार्य कराकर सूरिजी पाटण पधारे । वि. सं. १६४५ का चौमासा उन्होंने पाटण ही में किया । पाटण से विहार कर सूरिजी खंभात गये । यहाँ उन्होंने प्रतिष्ठादि कई कार्य किये । ऐसा मालूम होता है कि, उन्होंने सं. १६४६ का चातुर्मास खंभात ही में किया था । उसी वर्ष धनविजय, जयविजय, रामविजय, भाणविजय, कीर्त्तिविजय और लब्धिविजय को पन्यास पढ़ियाँ दी गई थीं । वि. सं. १६४७ में इस तरह कई कार्य पर सुरिजी अहमदाबाद गये । अहमदाबाद में सूरिजी का अच्छा सत्कार हुआ । उनके पधारने की खुशी में कई श्रावकों ने बहुत सा धन दान में दिया और बड़े बड़े उत्सव किये । वि. सं. १६४८ के साल सूरिजी अहमदाबाद ही में रहे थे । उस समय नवाब आजमखाँ के साथ उनका विशेष रूप से परिचय हुआ । उसका वर्णन सातवें प्रकरण के अन्त में किया जा चुका है । सूरिजी वहाँ से विचरण करते हुए राधनपुर पधारे । वहीं अकबर का वह पत्र मिला था, जिसमें उसने विजयसेनसूरि को अपने पास भेजने की प्रार्थना की थी । तदनुसार वे भेजे गये थे राधनपुर में लोगों ने छः हजार सोना महोरों से, सुरिजी की पूजा की । वहाँ से विहार कर सूरिजी पाटण पधारे । पाटण में उस समय उन्होंने तीन प्रतिष्ठाएँ की थीं । क़ासमखाँ के साथ धर्मचर्चा- जिसका उल्लेख सातवें प्रकरण में किया जा चुका है - करने का अवसर भी सूरिजी को उसी समय मिला था ।

जिस समय सूरिजी पाटन में थे उस समय उन्हें एक दिन स्वप्न आया कि, - वे हाथी पर सवार होकर पर्वत पर चढ़ रहे हैं और हजारों लोग उन्हें नमस्कार कर रहे हैं ।

सूरिजी ने सोमविजयजी को अपना स्वप्न सुनाया । बहुत सोचविचार के बाद सोमविजयजी ने उत्तर दिया : - "इस स्वप्न का फल आपको सिद्धाचलजी की यात्रा करना होगा ।" थोड़े ही दिनों में यह स्वप्न सत्य हुआ । सूरिजी सिद्धाचलजी की यात्रा करने के लिए तत्पर हुए । वहाँ के जैनसंघ ने भी 'छरी'<sup>१</sup> (एक प्रकार की क्रिया) पालते हुए सूरिजी के साथ ही सिद्धाचलजी की यात्रा करना स्थिर किया । संघ ने गुजरात और काठियावाड़ के गाँवों में और पंजाब, काश्मीर और बंगाल के बड़े बड़े शहरों में कासिदों के साथ निमंत्रण भेजे । शुभ मुहूर्त में संघ सूरिजी और मुनिमंडल सहित धूमधाम से रवाना हुआ । गाडियाँ, रथ, पालकी, ऊँट, घोड़े और हजारों आदमियों सहित संघ आगे बढ़ने लगा । कई मंजिलें पूरी करके संघ अहमदाबाद पहुँचा । उस समय अहमदाबाद का सुबेदार अकबर का पुत्र मुराद था । उसने संघ और सूरिजी की बहुत भक्ति की । सूरिजी के उपदेश से प्रसन्न होकर उसने दो मेवड़े भी सूरिजी की सेवा में भेजे ।

१. विधिपूर्वक तीर्थयात्रा करनेवाले को 'छरी' पालने की शास्त्राज्ञा है । अर्थात् जिनके अन्त में 'री' आवे ऐसी छः बातें पालनी पड़ती है, - वे ये हैं, १ एकाहारी (एकवार भोजन करना) २ भूमि संस्तारी (पृथ्वी पर ही सोना) ३ पादचारी (पैदल चलकर ही जाना) ४ सम्यक्त्वधारी (देव, गुरु और धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखना) ५ सचित्तहारी (सचित-जीववाली वस्तुओं का त्याग करना) और ६ ब्रह्मचारी (घर से रवाना हुए उस समय से लेकर, यात्रा करके वापिस गर आवें तब तक बराबर ब्रह्मचर्य व्रत पालना ।)

इस प्रकार 'छरी' पालते हुए जो यात्रा की जाती है वह यात्रा सविधि कही जाती है ।

क्रमशः विहार करता हुआ संघ धोलके पहुँचा । खंभात निवासी संघवी उदयकरण ने विनति करके संघ को थोड़े दिनों तक वहाँ ठहराया । उसी के बीच में बाई साँगदे और सोनी तेजपाल भी अपने साथ छत्तीस सेजवाला लेकर खंभात से आ गये । वे भी इस संघ के साथ ही सिद्धाचलजी की यात्रा को चले ।

जब यह बड़ा संघ पालीताना से थोड़ा ही दूर रहा तब 'सोरठ' के अधिपति नौरंगखाँ को मालूम हुआ कि, सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हीरविजयसूरि एक बड़े संघ के साथ सिद्धाचल की यात्रा करने के लिए जा रहे हैं, तब वह तत्काल ही उनकी अगवानी के लिए आया । सोरठ के सुबेदार के साथ थोड़ी देर तक सूरिजी वार्तालाप करते रहे । फिर उन्होंने अकबर के दिये हुए कुछ फर्मान उसको बताये । सुबेदार बहुत प्रसन्न हुआ । उसने सूरिजी का बड़ा सत्कार किया । आनंदोत्सव के साथ सूरिजी का पालीताना में प्रवेश कराया । एक ओर अनेक प्रकार के बाजों से गूँजते हुए गंगनमंडल में भाटों की विरुद्धावली की ध्वनि थी । और दूसरी ओर भजनमंडलियों द्वारा खेला जानेवाला दाँड़ियारास और अन्तिम भाग में चलती हुई सुंदरियों के सिद्धाचलजी के चरणस्पर्श करने को उत्साहित करनेवाले गीत अन्तःकरणों को आनंद से भर देते थे । लाखों मनुष्यों की भीड़ में चलते हुए सूरीश्वरजी को हजारों मनुष्य सोना चाँदी के फूलों से वधाते थे । गृहस्थ एक दूसरे को केशर के छींटों से रँगकर उस दिन के अपूर्व प्रसंग का हर्ष प्रकट करते थे । कवि ऋषभदास ने लिखा है कि, - उस यात्रा में सूरिजी के साथ बहतर संघवी-सिंधी-थे । उनमें शाह श्रीमल, सिंधी उदयकरण, सोनी तेजपाल, ठकर कीका, काला, शाह मनजी, सोनी काला, पासवीर, शाह संघजी, शाह सोमजी, गाँधी कुँअरजी, शाह तोला, बहोरा बरजाँग, श्रीपाल आदि मुख्य थे । शाह श्रीमल के साथ केवल पाँचसौ तो रथ ही थे । घोड़े-पालकी आदि तो हजारों थे । उसके साथ चार जोड़ी नौबत तथा निशान भी थे-ध्वजाएँ थीं ।

इनके अलावा पाटन से ककु शेठ भी संघ लेकर आये। अबजी महता, सोनी तेजपाल, दोसी लालजी और शाह शिवजी आदि भी पाटन से संघ के साथ आये। अहमदाबाद से तीन संघ आये थे। शाह वीपू और पारख भीमजी संघपति होकर आये थे। पूँजा बंगाणी, शाह सोमा और खीमसी भी आये थे।

मालवे से डामरशाह भी संघ लेकर आया था। उसके साथ चंद्रभान, सूरा और लखराज आदि भी थे। मेवात से कल्याण<sup>१</sup> बंबू भी संघ लेकर आया था। उसने दो सेर शक्कर की भाजी बाँटी थी। मेडता से सदारंग भी संघ लेकर आया था।

उपर्युक्त स्थानों के अलावा इस यात्रा में जेसलमेर, बीसनगर, सिद्धपुर, महसाना, ईडर, अहमदनगर, हिम्मतनगर, साबली, कपडवण्ज, मातर, सोजित्रा, नडियाद, वडनगर, डाभला, कड़ा, महेमदाबाद, बारेजा, बडोदा, आमोद, शीनोर, जंबूसर, केरवाडा, गंधार, सूरत, भदूच, रानेर, दीव, ऊना, घोघा, नयानगर, माँगरोल, वेरावल, देवगिरि, वीजापुर, वैराट, नदरबार, सीरोही, नडुलाई, राधनपुर, वडली, कुणगेर, प्रांतिज, महिअज, पेथापुर, बोरसद, कडी, धोलका, धंधूका, वीरमगाम, जूनागढ़ और कालावड आदि गाँवों के संघ भी आये थे। 'विजयतिलकसूरि रास' के कर्ता पं. दर्शनविजयजी के कथनानुसार, इस संघ में सब मिलकर दो लाख मनुष्य इकट्ठे हुए थे।

जिस समय की हम बात लिख रहे हैं, वह वर्तमान समय के जैसा न था। उस समय एक नगर से दूसरे नगर खबर पहुँचाने में अनेक दिन

१. यह आगरा का रहनेवाला था। उसने समेतशिखर की यात्रा के लिए एक बहुत बड़ा संघ निकाला था। संघने पूर्व देश के समस्त तीर्थों की यात्रा की थी। श्रीकल्याणविजयजी वाचक के शिष्य पं. जयविजयजी ने इस यात्रा का वर्णन अपनी 'समेतशिखर-तीर्थमाला' में किया है। देखो तीर्थमाला संग्रह भाग पहला पृ. २२-३२ तक।

लग जाते थे। आज तो घंटों और मिनिटों में समाचार पहुँचाये जा सकते हैं। उस समय तीर्थयात्रा करने में महीनों बीत जाते थे। हजारों लाखों रुपये खर्च होते थे और अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते थे। इस समय में तो कुछ ही दिनों में, थोड़ा ही धन खर्च करने पर विना कठिनता से लोग यात्रा कर आते हैं। उस समय बहुत ज्यादा धन और समय खर्च करने और जोखम उठाने पर तीर्थयात्रा होती थी, इसलिए बहुत ही कम लोग यात्रार्थ जाते थे। जब बड़े बड़े संघ निकलते थे तभी लोग यात्रार्थ जाते थे।

प्रस्तुत यात्रा में इतने प्रान्तों के संघ आये थे। इसका यही कारण था कि, ऐसा अपूर्व प्रसंग बार बार नहीं आता है। उस समय आनेवाले लोगों को स्थावर और जंगम दोनों तरह के तीर्थों की यात्रा करने का अपूर्व अवसर मिला था। स्थावरतीर्थ थे 'सिद्धाचलजी' और जंगमतीर्थ थे हीरविजयसूरि। यही हेतु था कि, लाखों मनुष्य उस समय एकत्रित हो गये थे। ऋषभदास कवि ने लिखा है कि उस यात्रा में एक हजार साधु हीरविजयसूरि के साथ थे।

कल चैत्री पूर्णिमा है। कल ही के दिन पुंडरीक स्वामी पाँच करोड़ मुनियों सहित मोक्ष में गये थे। इसलिए हमें भी कल ही यात्रा करनी चाहिए। पालीताना गाँव से शत्रुंजयगिरि लगभग दो माइल दूर है। सवेरे सारा संघ एक साथ रवाना न हो सकेगा यह सोचकर संघ सहित सूरिजी ने चतुर्दशी ही को पर्वत की ओर प्रस्थान किया।

शत्रुंजयगिरि की तलहटी में, इस समय यात्रियों के आराम के लिए अनेक साधन हैं; परन्तु उस समय कोई साधन नहीं था। इसलिए हीरसौभाग्य काव्य के कर्ता का कथन है कि - सूरिजी ने शिवजी के मंदिर में चौदस की रात बिताई थी। और संघने मैदान में।

दूसरे दिन अर्थात् पूर्णिमा के दिन सवेरे ही बड़े बड़े धनाढ़िय गृहस्थों ने सोने चाँदी के पुष्पों और सच्चे मोतियों से इस पहाड़ को बधाया और

सूरिजी सहित सारे संघ ने शत्रुंजय के पवित्र पर्वत पर चढ़ना प्रारंभ किया। धीरे धीरे बड़े उत्साह के साथ, एक के बाद एक मेखला और टेकरी को लाँঁघते हुए सब ने पर्वत के ऊपरि भाग के प्रथम दुर्ग में प्रवेश किया। इसके बाद सूरिजी और संघ ने कहाँ कहाँ दर्शन किये? इसका वर्णन 'हीरसौभाग्यकाव्य' में इस प्रकार किया गया है,-

"संघ ने और सूरिजी ने प्रथम दुर्ग में प्रवेश करते ही हाथी पर अवस्थित मरुदेवी माता की मूर्ति को प्रणाम किया। वहाँ से, शान्तिनाथ के, अजितनाथ के मंदिरों में, पश्चात् पेथडशाह के बनाये हुए मंदिरों में दर्शन करते हुए छीपवस्ती में प्रवेश किया। वहाँ से टोटरा और मोल्हा नामक मंदिरों में दर्शन कर कपर्दियक्ष और अदवददादा के आगे स्तुति की। फिर वे मरुदेवी शिखर से उत्तरकर स्वर्गारोहण नामकी टूंक पर अनुपमादेवी के बनवाये हुए अनुपम नाम के तालाब को देखते हुए ऊपर चढ़े और ऋषभदेव के मंदिरवाले दुर्ग में गये। इस दुर्ग के पास वस्तुपाल की बनवाई हुई गिरिनार की रचना है; उसको देखा। वहाँ से खरतरवसती नाम के मंदिर में गये। राजीमती और नेमनाथ की मूर्तियों की वंदना की। वहाँ से घोड़ाचौकी नाम के मंदिर के और पादुका के दर्शन कर तिलकतोरण नाम के जिनालय में दर्शन किये। वहाँ से सूर्यकुंड को देखते हुए मूल मंदिर के कोट में घुसे और सीढ़ीयाँ चढ़ने लगे। जीनों पर चढ़ते हुए क्रमशः तोरन, मंदिर का रंगमंडप, ध्वजाओं, रंगमंडप के स्तंभों, हाथी पर बैठी हुई मरुदेवा माता, मंदिर के गभारे और खास ऋषभदेव प्रभु की मूर्ति को देखकर सूरिजी को अत्यन्त आनंद हुआ। ऊपर चढ़कर मूल मंदिर की परिक्रमा में देवरियों के अंदर बिराजमान प्रतिमाओं के और रायणवृक्ष के नीचेवाली पादुका के दर्शन किये। उसके पश्चात जसु ठक्कर के बनवाये हुए तीन द्वारवाले मंदिर के, रामजी शाह के बनवाये हुए चार द्वारवाले मंदिर के और ऋषभदेव के सामने बिराजमान पुंडरीक स्वामी के माता की मूर्ति को नमस्कार कर ऋषभदेव भगवान की

भावसहित स्तुति की। तत्पश्चात बाहर आकर मूलद्वार के आगे जो खुली जगह है उसमें दीक्षादान, ब्रतोच्चारण आदि धर्म-क्रियाएँ सूरिजी ने करवाई। वहाँ से पुंडरीक गणधर की प्रतिमा के सामने जाकर सूरिजी ने 'शत्रुञ्जयमाहात्म्य' पर व्याख्यान दिया।"

उपर्युक्त वर्णन के सिवा हीरसौभाग्यकाव्य के कर्ता ने एक महत्व की बात लिखी है; और यह है कि, सूरिजी कई दिनों तक सिद्धाचल पर्वत पर रहे थे।

सिद्धाचलजी के समान पवित्र तीर्थस्थान पर रात रहना निषिद्ध है, परन्तु हीरविजयसूरि की अवस्था ज्यादा हो गई थी। बारबार चढ़ना उत्तरना उनके लिए कठिन था, इसलिए विवश होकर अपवाद रूप से वे ऊपर रात रहे थे। हीरसौभाग्य की टीका में भी वे क्यों ऊपर रात रहे थे? इस प्रश्न का यही उत्तर दिया गया है<sup>१</sup>।

कवि ऋषभदास ने भी हीरविजयसूरिरास में इस यात्रा का वर्णन किया है। वह भी खास जानने योग्य है। उसने लिखा है:-

"तलहटी में तीन स्तूप हैं। उनमें से एक में ऋषभदेवजी की, दूसरे में धनविजयजी की और तीसरे में नाकर की चरण पादुकाएँ हैं। उन तीनों स्थानों में सूरिजी ने और संघने स्तुति की। वहाँ से धोलीपरब पर जाकर कुछ विश्राम किया। वहाँ शर्वत पिलाया जाता था। वहाँ से तीसरी बैठक में गये। यहाँ कुमारकुंड है। चौथी बैठक का नाम 'हिंगलाजका हड़ा' है। सूरिजी पाँचवीं बैठक पर चढ़ने में थक गये थे, इसलिए उन्होंने सोमविजयजी का सहारा लिया। शलाकुंड पर यात्रियों ने जल पीकर थोड़ा आराम लिया। यहाँ ऋषभदेवजी की पादुका भी है। संघ सहित सूरिजी ने इनकी वंदना की। वहाँ से आगे चले। छठी बैठक पर दो समाधियाँ देखीं। वहाँ से सातवीं बैठक में गये। वहाँ दो मार्ग दिखाई

१. देखो हीरसौभाग्यकाव्य सर्ग १६, श्लोक १४१ पृ. ८४७.

दिये। बारी में घुसकर जाते हुए चौमुखजी का मंदिर आता है और दूसरे मार्ग से जाते हुए सिंहद्वार आता है। सूरिजी संघ सहित सिंहद्वार होकर गये। सबसे बड़े मंदिर में पहुँचकर पहिले श्रीऋषभदेव भगवान के दर्शन किये और फिर तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। परिक्रमा में एकसौ चौदह छोटे छोटे चैत्य हैं। उनमें एकसौ बीस जिनबिंब हैं। उनके दर्शन किये। फिर एकसौ आठ मध्यम चैत्यों में और बड़े मंदिरों में सब मिलकर २४५ जिनबिंब हैं, उनके दर्शन किये। इनके अलावा एक सुंदर समवसरण है। उसके दर्शन कर रायणवृक्ष के नीचे की चौरानवे पादुकाओं के और तलघर के अंदर की दोसौ प्रतिमाओं के भी दर्शन किये। वहाँ से सूरिजी और दूसरे सभी लोग कोट के बाहर आये। कोट से बाहिर आकर सबसे पहिले खरतरवसी में दोसौ जिनबिंबों के दर्शन किये। यहाँ ऋषभदेव की मनोहर मूर्ति ने सबका ध्यान अपनी तरफ खींचा। वहाँ से पौषधशाला में आकर सूरिजी ने और संघ ने थोड़ी देर विश्राम लिया। कोट के बाहिर सत्रह मंदिर हैं। उनमें दोसौ प्रतिमाएँ हैं। उनको वंदना की। वहाँ से अनोपमतालाब और पाँडवों की देवरी पर होते हुए अदबदजी के मंदिर में पहुँचे। उनके दर्शन किये। वहाँ से कवड्यक्ष के दर्शन करते हुए सवासोमजी के चौमुखजी के मंदिर में गये। वह नया बना था। उसके चारों तरफ बावन देवरियाँ थीं। वहाँ एक तलघर में सौ प्रतिमाएँ थीं। उनके भी दर्शन किये। वहाँ एक पीठिका पर दश पादुकाएँ थीं। उनके भी दर्शन करके पुंडरीकजी के मंदिर में आकर दर्शन किये। यहाँ सूरिजी ने शत्रुञ्जय का माहात्म्य सुनाया।"

उपर्युक्त प्रकार से सूरिजी ने लाखों मनुष्यों के साथ सिद्धालचंजी की यात्रा की। ऋषभदास कवि के लिखे हुए वृत्तान्त से यह बात सहज ही मालूम हो जाती है कि, सूरिजी ने यात्रा की उस समय (वि. सं. १६५० में) सिद्धालचंजी पहाड़ पर किस जगह क्या था और खास खास स्थानों में कितनी कितनी मूर्तियाँ थीं।

सूरिजी के इस यात्रा-वर्णन से यह बात भी सहज ही ध्यान में आ जाती है कि, जमाना कितनी तेजी के साथ बदलता रहता है। कहाँ भाव-भक्ति सहित अपने सारे जीवन में सिर्फ एक दो बार यात्रा करके जीवन को सफल बनाने, और समझनेवाले पहिले के यात्री! और कहाँ गर्मी की मोसिम में केवल हवा खाने के लिए अथवा व्यापार-रोजगार के बोझे से व्याकुल होकर आराम लेने के लिए जानेवाले वर्तमान के यात्री! (इस कथन से किसीको यह नहीं समझना चाहिए कि भक्तिभाव के साथ यात्रार्थ जानेवाले अब हैं ही नहीं। अब भी अनेक भक्तिपुस्सर यात्रार्थ जानेवाले यात्री हैं।) कहाँ इतने विशाल तीर्थस्थान में अङ्गुलियों पर गिनने योग्य मूर्तियाँ और कहाँ आज की हजारों मूर्तियाँ! कहाँ तीर्थयात्रा करने के बाद सत्य, ब्रह्मचर्य, अनीति-त्याग, इच्छा निरोध आदि की भावनाएँ और कहाँ आज अनेक बार तीर्थयात्रा करने पर भी इन गुणों की और प्रवृत्त होने की उपेक्षा! कहाँ तीर्थस्थानों में वह शान्ति का साम्राज्य और कहाँ अज्ञानता के कारण चारों तरफ बढ़ा हुआ आज का अज्ञानतापूर्ण आडंबर! कहाँ तीर्थस्थानों और देवमंदिरों की रक्षा के लिए लोगों की आन्तरिक भावना और स्थिरप्रवृत्ति और कहाँ उनकी रक्षा के बहाने चलाये जानेवाले पक्षपातपूर्ण राजसीठाट के कारखाने! ये बातें क्या बताती हैं? जमाने का परिवर्तन या और कुछ?

उस समय जिन लोगों के तीर्थस्थानों में जाने का अवसर मिलता था वे, अपना अहोभाग्य समझते थे। तीर्थों की पवित्रभूमिका स्पर्श करते ही वे अपने आपको कृतकृत्य मानने लगते थे। जब तक वे तीर्थस्थानों में रहते थे तब तक क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषायों को मंद करते ही और अपने जीवन को सुधारने के लिए उत्तमोत्तम नियम ग्रहण करते थे।

सर्वत्र देववंदना करने के बाद सूरिजी एक स्थान पर बैठे। तब सारे संघवालों ने गुरुवंदना प्रारंभ की। डामर संघवी ने सूरिजी को वंदना करते

हुए सात हजार महमूदिकाएँ खर्चीं। गंधार का रामजीशाह जब गुरुवंदन करने लगा, तब सूरिजी की उस पर दृष्टि पड़ी। सूरिजी ने उसको कहा:- “क्यों? वचन स्मरण है न?” रामजी शाह ने उत्तर दिया :- “हाँ साहिब! मैंने वचन दिया था कि जब मेरे सन्तान हो जायगी तब मैं ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लूँगा।” सूरिजी ने कहा :- “तब, अब क्या विचार है? मैंने सुना है कि, तुम्हारे सन्तान हो गई है।” रामजी ने कहा :- “महाराज! मेरा सद्ग्राम्य है कि, मुझे ऐसे पवित्र स्थान में आपके समान महान गुरु के पास से व्रत लेने का अवसर मिला है।” उसके बाद उसी समय रामजी ने और उसकी स्त्री ने जिसकी आयु केवल बाईस बरस की थी - जीवनभर के लिए ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। छोटी उम्र में इन दोनों स्त्री पुरुषों को ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते देख दूसरे अनेक स्त्री-पुरुषों ने भी ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया।

उसके बाद पाटण के ककु शेठ ने भी ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। उनके साथ अन्य तिरपन मनुष्यों ने भी ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। ऋषभदास कवि लिखते हैं कि - हिरविजयसूरि की पूजा करने में ग्यारह हजार भरुची (एक प्रकार की मुद्रा) की उपज हुई थी।

इस तरह सिद्धाचलजी तीर्थ पर शुभ भावपूर्वक देवबंदन और व्रतग्रहणादि क्रियाएँ करने के बाद सब नीचे उतरे; पालीताना गाँव में आये।

कुछ काल पालीताने में रहने के बाद, सूरिजी ने विहार करने का और संघ ने विदा होने का निश्चय किया। भिन्न भिन्न स्थानों से आये हुए गृहस्थ सूरिजी से अपने अपने स्थान पर पधारने की विनती करने लगे। उनमें से भी खास करके खंभात के सिंधी उदयकरण की और दीव के मेघजी पारख, दामजी पारख और सवजी शाह की विनति विशेष आग्रहपूर्ण थी। इन दोनों स्थानों के गृहस्थों ने अपने अपने नगर में पधारने का अत्यंत अनुरोध किया। दीव की लाड़कीबाई नाम की एक श्राविका

थीं। उन्होंने सूरिजी से प्रार्थना करते हुए कहा :- “आपने स्थान स्थान पर विहार करके सर्वत्र प्रकाश किया है; परन्तु हम अब तक अँधेरे ही में भटकते हैं। इसलिए दया करके आपको दीव पधारना ही चाहिए।” अन्त में सूरिजी ने दीव के संघ को कहा :- “जैसी तुम्हारी इच्छा होगी और जिससे सबको सुखशान्ति होगी वही काम किया जायगा।”

दीव का संघ बहुत प्रसन्न हुआ। एक मनुष्य बधाई लेकर पालीताने से दीव पहुँच गया। वहाँ के श्राविकों ने इस शुभ समाचार को सुनकर आनंद प्रकट किया और बधाई देनेवाले को चार तोले स्वर्ण की जीभ, वस्त्र और बहुत सी ल्याहरियाँ इनाम में दीं।

जब अनेक देशों और गाँवों के बहुत बड़े जन-मंडल में से सूरिजी रवाना हुए तब वह मंडल गुरु-विरह के दुःख से दुखी हुआ। उस समय बिछुड़ते हुए संघ के हृदय में इस बात का स्वभावतः विचार होने लगा कि - न जाने अब सूरिजी के दर्शन होंगे या नहीं? और इस विचार ने उन्हें और भी दुखी बना दिया। गुरुजी से दूर होते समय सबका चेहरा उदास था। सूरिजी और उनके शिष्यवर्ग ने निराग भाव से दीव की तरफ विहार किया। पालीताणा से रवाना होकर दाठा, महुवा आदि स्थानों में होते हुए सूरिजी देलवाड़े पहुँचे। वहाँ से अंजार पहुँचकर अजारापार्श्वनाथ की यात्रा की। दीव का संघ सूरिजी को बंदना और विनति करने के लिये आया और बड़ी धूम-धाम के साथ यहाँ से दीव में ले गया। वहाँ से ऊने जाते हुए लोगों ने सूरिजी को मोतियों के थालों से बधाया। कहा जाता है कि, उस समय सूरिजी के साथ पचीस साथु थे। वहाँ रहकर सूरिजी प्रति दिन नवीन नवीन अभिग्रह-नियम लेने लगे।

सूरिजी हमेशा उना में व्याख्यान, करने लगे। हजारों लोग उनसे लाभ उठाने लगे। अनेक उत्सव हुए। मेघजी पारख,

लखराज रूडो, और लाड़की की माँ ने सूरिजी से प्रतिष्ठाएँ करवाईं। श्रीश्रीमालवंशी शाह बकोर ने अपना द्रव्य सद्मार्ग में खर्चकर सूरिजी के पास से दीक्षा ली। इनके अलावा और भी अनेक क्रियाएँ जैनों में हुईं। सूरिजी जब ऊना में थे तब जामनगर के जाम साहब का दीवान अबजी भनसाली भी सूरिजी को बंदना करने आया था। उसने सूरिजी की और दूसरे साधुओं की स्वर्णमुद्रा से नवआँगी पूजा की थी। एक लाख मुद्रा का लुँछन किया था और याचकों को बहुत सा दान दिया था। सं. १६५१ का चौमासा सूरिजी ने ऊना ही में बिताया। चौमासा बीतने पर यद्यपि सूरिजी ने विहार की तैयारी की तथापि श्रावकों ने विहार नहीं करने दिया। क्योंकि सूरिजी की तबीयत खराब थी। अतः उन्हें वहीं रहना पड़ा।

---

## प्रकरण ग्यारहवाँ । जीवन की सार्थकता ।

जैसे सूर्य उदय होकर अस्त भी जरूर होता है उसी तरह जन्म के पश्चात् मृत्यु भी उवश्मेव आती है। सम्राट् हो या मङ्गलेश्वर, धनी हो या निर्धन, गरीब हो या अमीर, बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष, चाहे कोई हो; साक्षात् देव ही क्यों न हो - जो जन्मा है उसे जल्दी या देर में मरना अवश्य होगा। मगर मौतमौत में भी फरक़है। जिन्होंने जन्म धारण करके अपने जीवन को सार्थक कर लिया है उन्हें अपनी मृत्यु आनंदायक मालूम होती है। कारण - उन्हें यह विश्वास होता है कि, मुझे निंद्य-तुच्छ-मानवी देह का त्याग कर दिव्य शरीर प्राप्त होगा। सच है, जिस मनुष्य को विश्वास हो कि मुझे इस झाँपड़ी को छोड़ने के बाद महल रहने के लिये मिलेगा, वह झाँपड़ी छूटने से दुखी नहीं होता। विपरीत इसके जो अपने जीवन को सार्थक न करके हाय ! मैं रहता हूँ उसे मरना भी हाय ! हाय ! मैं ही पड़ता हूँ और जन्मान्तर में भी वह हाय ! हाय ! उसका पीछा नहीं छोड़ती है।

जीवन की सार्थकता उत्तमोत्तम गुणों के आचरण में है। दया, दाक्षिण्य, विनय, विवेक, समभाव और क्षमादि बातें ही उत्तम गुण हैं। ये ही जीवन की सार्थकता के हेतु हैं। अपने नायक हीरविजयसूरि ऐसे उच्चतम गुणों के भंडार थे। बार बार अपने जीवन में आनेवाली तकलीफों को उन्होंने जिस सहनशीलता के साथ झेली हैं वे उनके जीवन की सार्थकता कों बताती हैं। गुजरात जैसे रम्य और परम श्रद्धालु प्रदेश को छोड़ना; अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हुए फतेहपुरसीकरी तक जाना; चार बरस तक उस प्रदेश में रहना; अकबर के समान बादशाह को अपना भक्त बनाना और सारे साम्राज्य में से छः महीने तक के लिए जीवहिंसा बंद करवाना क्या उनके जीवन की कम सार्थकता थी ? उनका समभाव कौसा

था ? इतने ऊँचे दर्जे तक पहुँचने पर भी वे कैसी नम्रता, विवेक, विनय और लघुता रखते थे ? और उनकी गुरुभक्ति कैसी थी ? इनका उत्तर जब उनके जीवन-प्रसंग देखते हैं तब हम आनंद से कह उठते हैं - जीवन यही धन्य है !

हीरविजयसूरि अपने साधुधर्म में कितने दृढ़ थे और अपने निमित्त तैयार की गई चीजों का उपयोग नहीं करने की वे कितनी सावधानी रखते थे इस संबंध की केवल एक घटना का हम यहाँ उल्लेख करेंगे ।

एक बार सूरिजी अहमदाबाद के कालूपुर के उपाश्रय में आये और श्रावकों से एक गोखड़ में -ताक में - जो नवीन बनाया गया था - बैठकर उपदेश देने की अनुमति चाही । श्रावकों ने कहा :- "महाराज ! हमसे पूछने की कोई आवश्यकता नहीं है । यह गोखड़ तो खास आपही के लिये बनवाया गया है ।" सूरिजी ने कहा :- "तब तो यह हमारे निरुपयोगी है । क्योंकि हमारे निमित्त से जो चीज तैयार कराई जाती उसको हम काम में नहीं ला सकते ।" इसके बाद वहाँ लकड़ी की एक चौकी पड़ी थी उस पर बैठकर सूरिजी ने व्याख्यान दिया ।

एक बार गोचरी में किसी श्रावक के यहाँ से खिचड़ी आई । सूरिजी ने उसे खाई । साधु लोग अभी आहारपानी कर भी न चुके थे कि, वह श्रावक-जिसके यहाँ से खिचड़ी आई थी-दौड़ता हुआ आया और सूरिजी के शिष्यों को कहने लगा :- "आज मुझसे बहुत बड़ा अनर्थ हो गया है । मेरे यहाँ से जो खिचड़ी आई है वह बहुत खारी है । इतनी खारी है कि, मैं उसका एक से दूसरा नवाला तक न ले सक ।" यह बात सुनकर साधु निस्तब्ध हो गये । कारण - दैवयोग से उस दिन सूरिजी ने उसके यहाँ की खिचड़ी ही खाई थी और खाते हुए उन्होंने किसी भी प्रकार से यह प्रकट नहीं होने दिया था कि, खिचड़ी खारी है । वे सदा की भाँती ही सन्तोषपूर्वक खाते रहे थे । इस घटना से यह प्रकट हो जाता है कि, अपनी

रसनेन्द्रिय पर उनका कितना अधिकार था । रसनेन्द्रिय को अधिकार में करना कितना कठिन है इसको हरेक समझ सकता है । अन्यान्य इन्द्रिय-विषयों पर अधिकार करनेवाले हजारों मनुष्य होंगे; परन्तु रसना इन्द्रिय को न रुचे इस प्रकार की वस्तु प्राप्त होने पर भी सन्तोषपूर्वक-उसका मन में दुर्भाव लाये बिना उपयोग करनेवाले तो विरले ही निकलेंगे । हरेक मनुष्य को, खास करके साधुओं को, जिनके निर्वाह का आधार केवल भिक्षावृत्ति ही है; जो संसारत्यागी हैं-तो रसना इन्द्रिय को अपने काबू में करनी ही चाहिए । कई नामधारी साधु साधुओं के लिए अग्राह्य पदार्थ को भी कई बार ग्रहण कर लेते हैं । इसमें उन्हें जरा सा भी संकोच नहीं होता । इसका कारण रसना इन्द्रिय में आसक्ति के सिवा और कुछ भी नहीं है ।

इसी प्रकार ऊना में भी एक खास स्मरणीय बात हुई थी । सूरिजी जब ऊना में थे तब उनकी कमर में एक फोड़ा हुआ था । वे समझते थे कि जब पाप का उदय होता है तब रोग से भरे हुए इस शरीर में से कोई न कोई रोग बाहर निकलता ही है । इसलिए रोग को शान्ति के साथ सह लेना ही मनुष्य का काम है । हाय ! हाय ! करने से वेदना शान्त तो नहीं होती; परन्तु वह नवीन असाता वेदनी के कर्मों को उत्पन्न करती है । इन्हीं भावनाओं के कारण, यद्यपि शरीर-धर्म के अनुसार उन्हें फोड़े से अत्यन्त वेदना होती थी; तथापि वे उसे सम्भाव पूर्वक सहन करते थे । एक दिन ऐसा हुआ कि, सूरिजी ने रात के बक्त संथारा किया । एक श्रावक उनकी भक्ति-सेवा करने के लिए आया । उसकी अँगुली में एक सोने की अंगूठी आँटोवाली थी । वह सूरिजी का शरीर दब रहा था । दबाते हुए अंगूठी की नोक फोड़े में घुस गई । फोड़े की वेदना अनेक गुणी बढ़ गई । रक्त निकला । सूरिजी की चद्दर भीग गई । इतना होने पर भी सूरिजी पूर्वतः ही शान्ति से रहे । उस श्रावक को भी उसकी इस असावधानता के लिए कुछ नहीं कहा । उन्होंने यह सोचकर मन को स्थिर रखा कि, जितनी वेदना भोगना मेरे भाग्य में बदा होगा उतनी मुझे भोगनी ही पड़ेगी । दूसरे

को दोष देने में क्या लाभ है ? सवेरे ही श्रीसोमविजयजी ने सूरिजी की चहर रक्तवाली देखी । उसका कारण जाना और श्रावक की असावधानी के कारण बहुत खेद प्रकट किया । सूरिजी ने उन्हें प्राचीन ऋषियों के उदाहरण दे देकर समझाया कि, वे सब इससे भी अनेक गुणी ज्यादा वेदना सहकर विचलित नहीं हुए थे और आत्मभाव में लीन रहे थे, तब इस तुच्छ कष्ट के लिए अपने आत्मभावों को विसार देना हमारे लिए कैसे शोकास्पद हो सकता है ?

सूरिजी में अनेक गुण थे । उनमें से एक खास महत्व का और अपनी और ध्यान खींचनेवाला था । वह था 'गुणग्राहकता' । सूरिजी आचार्य थे । दो ढाई हजार साधु उनकी सेवा में रहते थे । लाखों श्रावक उनकी आज्ञानुसार चलते थे । अनेक राजा-महाराजा उनके उपदेशानुसार कार्य करते थे । इतना होने पर भी वे जब कभी किसी में कोई गुण देखते थे तो उसका सत्कार किये बिना नहीं रहते थे ।

सूरिजी के समय ही में अमरविजयजी<sup>१</sup> नामके एक साधु हुए हैं । वे त्यागी, वैरागी और महान् तपस्वी थे । निर्दोष आहार लेने की ओर तो उनका इतना ज्यादा ध्यान था कि, कई बार उनको निर्दोष आहार न मिलने के कारण तीन तीन चार चार दिन तक उपवास करने पड़ते थे । हीरविजयसूरि उनकी त्यागवृत्ति पर मुग्ध थे । एक बार जब सब साधु आहारपानी ले रहे थे उस समय सूरिजी ने उनसे कहा :- "महाराज, आज तो आप मुझे अपने हाथ से आहार दीजिए ।" कितनी लघुता ! गुणजनों के प्रति कितना अनुराग ! इतनी उच्चस्थिति में पहुँचने पर भी कितनी निरभिमानता ! अमरविजयजीने सूरिजी के पात्र में आहार दिया । एक महान् पवित्र-तपस्वी महापुरुष के हाथ से आहार लेने में सूरीश्वरजी को जो आनंद हुआ वह वास्तव में अवर्णनीय है । सूरिजी ने उस दिन को

१. पृ. २१३ के फुटनोट में प. कमलविजयजी के बारे में कहा गया है । अमरविजयजी उन्हींके गुरु थे ।

पवित्र मानकर अपनी गिनती के पवित्र दिनों में जोड़ा और अपने आपको भी उस दिन उन्होंने धन्य माना ।

सूरिजी में जैसी गुण-ग्राहकता थी वैसी ही लघुता भी थी । हम इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि, अकबर ने जीवदया से संबंध रखनेवाले और इसी तरह के जो काम किये थे, उन सबका श्रेय हीरविजयसूरि ही को है । यद्यपि विजयसेनसूरि, शान्तिचन्द्रजी, भानुचन्द्रजी और सिद्धचन्द्रजी ने बादशाह के पास रहकर कई काम करवाये थे; तथापि प्रताप तो सूरिजी ही का था । कारण बादशाह के पास रहकर दीर्घकाल तक उन्होंने जो बीज बोये थे - बीज ही नहीं उसके अंकुर भी फुटाये थे - उन्हींके वे फल थे । इसलिए उनका सारा यश सूरिजी ही को है । इतना होने पर भी सूरिजी यही समझते थे कि, मैंने जो कुछ किया है या करता हूँ अपना कर्तव्य समझकर किया है; या करता हूँ । मैंने विशेष कुछ नहीं किया । मैं तो, मेरे सिर पर जितना कर्तव्य है उतना भी पूर्ण नहीं कर रहा हूँ ।

एक बार किसी प्रसंग पर एक श्रावक ने सूरिजी से उनकी प्रशंसा करते हुए कहा :- "आप जैसे शासनप्रभावक पुरुष धन्य हैं कि, जिन्होंने अकबर बादशाह को उपदेश देकर उससे वर्ष में से छः महीनों के लिए सारे भारत में से जीवहिंसा बंद करवा दी ।"

सूरिजी ने कहा :- "भाई ! जगत् के जीवों को सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करना तो हमारा धर्म ही है । हम तो केवल उपदेश देने के अधिकारी हैं । उपदेश के अनुसार व्यवहार करना या न करना श्रोताओं के अधिकार की बात है । हम जब उपदेश देते हैं तब कई सावधान होकर सुनते हैं; कई बैठे हुए सोया करते हैं । कई अव्यवस्थित रीति से बैठकर मन को इधर उधर भमाते हैं और कई तो उठकर चलते भी जाते हैं । अभिप्राय यह है कि, हजारों को उपदेश देने पर भी लाभ तो बहुत ही

कम मनुष्यों को हुआ करता है। अकबर ने जो काम किये हैं इनका कारण तो उसका स्वच्छ अन्तःकरण ही है। यदि उसने वे काम न किये होते तो हम क्या कर सकते थे? मैंने जब सिफ़्र पर्युषणों के आठ दिन माँगे तब उसने अपनी तरफ़ से चार दिन और जोड़कर बारह दिन का पर्वाना कर दिया। यह उसकी सज्जनता थी या और कुछ? यदि विचार करेंगे तो मालूम होगा कि, श्रेष्ठ कार्य में याचना करनेवाले की अपेक्षा दानकरनेवाले की कीर्ति विशेष होती है। मैंने माँगकर अपना कर्तव्य पूर्ण किया, बादशाह ने देकर-कामकर अपनी उदारता दिखाई। कार्य करने की अपेक्षा उदारता दिखाना विशेष श्लाघ्या है। इसके उपरान्त मुझे स्पष्टतया यह कह देना चाहिए कि बादशाह ने जितनी अमारीघोषणाएँ कराई-जीवहिंसाएँ बंद करवाई और गुजरात में प्रचलित जजिया नामका जुल्मी कर बंद कराया इन सबका श्रेय शान्तिचंद्रजी को है और शत्रुंजयादि के फर्मान लेने का यश भानुचंद्रजी को है। क्योंकि ये कार्य उन्होंके उपदेश से हुए हैं।'

कितना स्पष्ट कथन! कितनी लघुता! कितनी निरभिमानता!! सचमुच ही उत्तम पुरुषों की उत्तमता ऐसे ही गुणों में समाई हुई है।

सूरिजी में गुरुभक्ति का गुण भी प्रशंसनीय था। गुरु की आज्ञा को वे परमात्मा की आज्ञा समझते थे। एक बार उनके गुरु विजयदानसूरि ने उन्हें किसी गाँव से एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने लिखा था कि, इस पत्र को पढ़ते ही जैसे हो सके वैसे यहाँ आओ।

पत्र मिलते ही सूरिजी रवाना हो गये। उस दिन दो दिन के उपवास का पारण करना था। पारण कर विहार करने की श्रावकों ने बहुत विनती की; परन्तु उन्होंने किसी की बात नहीं मानी। वे यह कह रवाना हो गये कि, - गुरुदेव की आज्ञा तत्काल ही रवाना होने की है, इसलिए मुझे रवाना होना ही चाहिए। बहुत जल्दी, सहसा, गुरु के पास जा पहुँचे। गुरुजी

को बड़ा आश्र्य हुआ कि, - वे इतने जल्दी कैसे जा पहुँचे। पुछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि, - जब आपकी आज्ञा तत्काल ही आने की थी तब एक क्षण के लिए भी मैं कहीं कैसे ठहर सकता था? विजयदानसूरि अपने शिष्य की ऐसी भक्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। पीछे से जब उन्हें यह मालूम हुआ कि; हीरविजयसूरि दो दिन के उपवास का पारण करने जितनी देर भी नहीं ठहरे, तब तो उनकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा। गुरु की आज्ञापालन करने में कितनी उत्सुकता! कितनी तत्परता! ऐसे शिष्य गुरु की पूर्ण कृपा प्राप्त करें और संसार में सुयश-सौरभ फैलावें तो इसमें आश्र्य की कोई बात नहीं है।

हीरविजयसूरि में उपर्युक्त प्रकार के उत्तमोत्तम गुण थे। वे उपदेश द्वारा हजारों मनुष्यों का कल्याण करने का अश्रान्त प्रयत्न करते थे, इसलिए उनका जीवन तो वास्तविक अर्थ में सार्थक ही था। तो भी वे यह मानते थे - और यह सच भी है - कि, बाह्य प्रवृत्तियों की अपेक्षा आध्यात्मिक प्रवृत्ति ही विशेष लाभदायक होती है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति द्वारा प्राप्त हार्दिक प्रवित्रता बाह्य प्रवृत्ति में बहुत सहायता पहुँचाती है। हार्दिक प्रवित्रताविहीन मनुष्य का लाखों ग्रन्थ लिखे जाये इतना उपदेश भी निष्फल जाता है। हृदय की प्रवित्रतावाले मनुष्य को बहुत बोलने की भी आवश्यकता नहीं होती है। उसके थोड़े ही शब्द मनुष्यों के हृदयों पर अपना पूरा असर डालते हैं।

हीरविजयसूरिजी जैसे उपदेशादि बाह्य प्रवृत्तियों से अपने जीवन को सार्थक किया था वैसे ही बाह्य प्रवृत्ति की पूर्ण सहायक-कारण आध्यात्मिक प्रवृत्ति को भी वे भूले न थे। वे समय समयपर एकान्त में बैठकर घंटों ध्यान करते थे। कई बार तपी हुई रेती पर बैठ 'आतापना' भी लिया करते थे। रात्रि के पिछले प्रहर में - जो योगियों के ध्यान के लिए अपूर्व गिना जाता है - उठकर ध्यान तो वे नियमित रूप से किया ही करते थे। सूरिजी की इस आध्यात्मिक प्रवृत्ति से प्रायः लोग अजान ही थे। और तो और

उनके साथ रहनेवाले साधुओं में से भी बहुत कम साधु इस बात को जानते थे ।

एक दिन की बात है । सूरिजी उस समय सीरोही में थे । वे हमेशा के नियमानुसार पिछली रात में उठकर ध्यान में खड़े थे । अवस्था और शारीरिक अशक्ति के कारण उनको चक्कर आ गया । वे धड़ाम से जमीन पर गिरकर बेहोश हो गये । धमाका सुनकर साधु जागृत हुए । खोजने से पता चला कि, सूरिजी ही अशक्ति के कारण ध्यान करते हुए गिर गये हैं । थोड़ी देर बाद जब उन्हें चेत हुआ तब सोमविजयजी ने विनीत भाव से कहा :— “महाराज ! अब आप वृद्ध हुए हैं । जैनशासनोन्नति की चिन्ता में आपने अपना शरीर सुखा दिया है । शरीर बहुत ही कमजोर हो गया है । इस दशा में ऐसी आभ्यन्तरिक क्रियाओं से दूर रहा जाय तो उत्तम है । आपने परमात्मा के शासन के लिए जो कुछ किया है या जो कुछ करते हैं वह कुछ कम नहीं है । यदि आपके शरीर में विशेष शक्ति रहेगी तो विशेष कार्य कर सकेंगे और हमारे समान अनेक जीवों का उद्धार भी कर सकेंगे ।”

सूरिजी ने सोमविजयजी आदि साधुओं को समझाते हुए कहा :— “भाई ! तुम जानते हो कि, शरीर क्षणभंगुर है । कब नष्ट हो जायगा इसकी खबर नहीं है । इस अंधेरी कोठड़ी में अमूल्य रल भरे हुए हैं । उनमें से जितने अपने हाथ आवें उतने ले लेने चाहिए । शरीर की दुर्जनता का विचार करने से मालूम होता है कि, उसको तुम कितना ही खिला पिलाकर हृष्पुष्ट करो मगर, अन्त में वह जुदा हो ही जायगा — यहीं पर रह जायगा । तो फिर उस पर मोह किसलिए करना चाहिए । उससे तो बन सके उतना काम लेना ही अच्छा है । इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि, हजारों लाखों मनुष्य वश में किये जा सकते हैं; परन्तु आत्मा को आधीन करना बहुत ही कठिन है । जब आत्मा आधीन हो जाता है तब सारा संसार आधीन हो जाता है । ‘अप्पाजीए सब्बं जीअं’ । आत्मा को जीता तो

सबको जीता । जगत् को जीतने में — मनुष्यों पर अपना प्रभाव डालने में भी आत्मा को जीतने की आवश्यकता है । इस आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए अध्यात्म प्रवृत्ति बहुत ही जरूरी है । आध्यात्मिक बल लाखों मनुष्यों के बलों से भी करोड़ गुण अधिक है । जिस काम को लाखों मनुष्य नहीं कर सकते हैं उस काम को आध्यात्मिक बलवाला अकेला कर सकता है ।”

सूरिजी के वचन सुनकर साधु स्तब्ध हो गये; एक शब्द भी वे न बोल सके । उनको यह सोचकर बड़ा आश्वर्य होने लगा कि; — जगत् में इतनी प्रतिष्ठा और पूजा प्राप्त करके भी सूरिजी इतने वैरागी हैं ! साधुओं को सँभालने में, लोगों को उपदेश देने में और समाजहित के कामों में सतत परिश्रम करने पर भी बाह्य प्रवृत्ति से वे इतने निर्लेप हैं !

यहि अध्यात्म है । मन को वश में करने की इच्छा से — आत्मा को जीतने के इरादे से जो अध्यात्म-प्रवृत्ति करते हैं वे आध्यात्मिक प्रवृत्ति का आडंबर नहीं करते । जो सच्चे अध्यात्म-प्रिय हैं वे कभी भी आडंबर प्रिय नहीं होते । जहाँ आडंबर प्रियता है वहाँ सच्चा अध्यात्म नहीं रहता । आध्यात्मिकों में इन्द्रियदमन, शारीरिक मूर्च्छा का त्याग और वैराग्य — ये गुण होने ही चाहिएँ । इन गुणों के बिना अध्यात्म-ज्ञान में प्रवृत्ति नहीं हो सकती । वर्तमान में कुछ शुष्क आध्यात्मिक अध्यात्मविद् होने का दावा करते फिरते हैं; मगर देखने जाँयेंगे तो किसी में उपर्युक्त गुणों में से थोड़ासा अंश भी नहीं मिलेगा । ऐसों को अध्यात्मविद् कहना या मानना ठगों को उत्साहित करना है ।

हीरविजयसूरि के जीवन की सार्थकता के संबंध में अब विशेष कुछ कहना नहीं हैं । आध्यात्मिक प्रवृत्ति से और उपदेशादि बाह्य-प्रवृत्ति से-दोनों तरह से उनका जीवन जनता के लिए आशीर्वादरूप था । कर्मों को क्षय करने के लिए उन्होंने तपस्या भी बहुत की थी । संक्षेप में यह है कि, जैसे वे एक उपदेशक थे वैसे ही तपस्वी भी थे । स्वभावतः उनमें

त्यागवृत्ति विशेष थी। सदैव वे गिनती की बारह चीजें ही काम में लाते थे। छट्ठ, अङ्गुष्ठ, उपवास, आंबिल, नीवि और एकासनादि तपस्याएँ तो वे बात की बात में कर लिया करते थे। ऋषभदास कवि के कथनानुसार उन्होंने जो तपस्याएँ अपने जीवन में की थीं वे इस प्रकार हैं:-

“इकासी तेले, सवा दो सौ बेले, छत्तीस सौ उपवास, दो हजार आंबिल और दो हजार नीवियाँ की थीं। इनके सिवाय उन्होंने वीस स्थानक की आराधना बीस बार की थी; उसमें उन्होंने चारसौ चौथ और चारसौ आंबिल किये थे। भिन्न भिन्न भी चारसौ चौथ किये थे। सूरिमंत्र की आराधना करने के लिए वे तीन महीने तक ध्यान में रहे थे। तीन महीने उन्होंने एकासन, आंबिल, नीवि और उपवासादि में ही बिताये थे। ज्ञान की आराधना करने के लिए भी उन्होंने बाईस महीने तक तपस्या की थी। गुरुतप में भी उन्होंने तेरह महीने बेले, तेले, उपवास, आंबिल और नीवि आदिक तपस्याओं में बिताये थे। इसी तरह उन्होंने ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना के ग्यारह महीनों का और बारह प्रतिमाओं का भी तप किया था।” आदि

आत्म-शक्तियों का विकास यूँहीं नहीं होता। यदि खानेपीने और इन्द्रियों के विषयों ही में लुब्ध रहने से आत्मशक्तियों का विकास होता तो क्या संसार का हरेक आदमी नहीं कर लेता? आत्मशक्ति का विकास करने में - लाखों मनुष्यों पर प्रभाव डालने की शक्ति प्राप्त करने में अत्यन्त परिश्रम करना पड़ता है। महावीरदेव सम्पूर्ण आत्मशक्ति को कब विकसित कर सके थे? जब उन्होंने बारह बरस तक लगातार तपस्या की थी तब। इन्द्रिय-विषयासक्ति मिटाये बिना, दूसरे शब्दों में कहें तो इच्छा का निरोध किये बिना तपस्या नहीं होती। तपस्या के बिना कर्मों का क्षय होना असंभव है। हीरविजयसूरि ने जगत् पर उपकार करने का महान् प्रयत्न करते हुए भी, आत्मशक्ति के विकासार्थ भरसक तपस्या की थी और जीवन को सार्थक बनाया था।

सूरिजी की विद्वता के विषय में भी यहाँ कुछ कहना आवश्यक है। वे साधारण विद्वान् नहीं थे। यद्यपि उनके बनाये हुए ‘जम्बूद्वीपप्रज्ञपत्तीका’ और ‘अन्तरिक्षपार्श्वनाथस्तव’ आदि बहुत ही थोड़े ग्रन्थ उपलब्ध हैं तथापि उन्हें देखने और उनके किये हुए कार्यों पर दृष्टिपात करने पर उनकी असाधारण विद्वता के विषय में लेशमात्र भी शंका नहीं रहती है। उस समय के बड़े बड़े जैनेतर विद्वानों के साथ वाद करने में तथा अलिमफाजिल सूबेदारों पर और खास करके समस्त धर्मों का तत्त्व-शोधने में अपनी समस्त जिंदगी बितानेवाले अकबर बादशाह पर धार्मिक प्रभाव डालने में सफलता प्राप्त करना, साधारण ज्ञानवाले का काम नहीं हो सकता, यह स्पष्ट है। अकबर ने अपनी धर्मसभा के पाँच वर्गों में से पहले वर्ग में उन्हीं लोगों को दाखिल किया था कि, जो असाधारण विद्वान् थे। उसी प्रथम वर्ग के सूरिजी सभासद थे। इस बात का पहले उल्लेख हो चुका है।

इन सारी बातों से यह बात सहज ही समझ में आ सकती है कि, हीरविजयसूरि प्रखर पंडित थे।

अब उनके जीवन के संबंध में कहने योग्य कोई भी बात नहीं रही। ज्ञान, ध्यान, तपस्या, दया, दक्षिण्य, लोकोपकार और जीवदया का प्रचार आदि सब बातों से अपने ग्रन्थनायक हीरविजयसूरि ने निज जीवन को सार्थक किया था। इस प्रकार जीवन को जो सार्थक कर लेते हैं उन्हें मृत्यु का भय नहीं रहता। उनको मृत्यु से इतनी ही प्रसन्नता होती जितनी प्रसन्नता मनुष्य को झाँपड़ी से महल में जाने में होती है।

## प्रकरण बारहवाँ ।

### निर्वाण ।

गत प्रकरण के अन्त में यह कहा जा चुका है कि, सूरिजी वि.सं. १६५१ का चातुर्मास समाप्त कर जब ऊना से विहार करने लगे थे तब उनका शरीर अस्वस्थ था, इसलिए संघने उन्हें विहार नहीं करने दिया । विवरण सूरिजी को वहीं रहना पड़ा ।

जिस रोग के कारण सूरिजी ने अपना विहार बंद रखा था वह रोग विहार बंद रखने पर भी शान्त न हुआ । प्रतिदिन रोग बढ़ता ही गया । धीरे धीरे पैरों पर भी सूजन आ गई । श्रावकों ने सब तरह की औषधियों का प्रबंध करना चाहा; परन्तु सूरिजी ने उन्हें रोक दिया । उन्होंने कहा :- “मेरे लिए दवा का प्रबंध करने की कोई आवश्यकता नहीं है । मेरा धर्म है कि, मैं उदय में आये हुए कर्मों को समतापूर्वक भोग लूँ । रोगों से भरे हुए विनश्वर शरीर की रक्षा के लिए अनेक प्रकार के पापपूर्ण कार्य करना सर्वथा अनुचित है ।”

विधि-अपवाद को जाननेवाले श्रावकों ने शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा यह बताने की कोशिश की कि, आपके समान शासनप्रभावक गच्छनायक सूरीश्वर को अपवादरूप से, रोगनिवारणीय यदि कुछ दोष का सेवन करना पड़े तो वह भी शास्त्रोक्त ही है । मगर सूरिजी ने उनकी बात नहीं मानी । सूरिजी इस अपवादमार्ग से अनभिज्ञ नहीं थे । वे शास्त्रों के पारगामी थे; गीतार्थ थे और महान अनुभवी थे । इसलिए वे इस बात से अपरिचित नहीं थे, तो भी वे निषेध करते थे । कारण - उनको यह निश्चय हो गया था कि, मेरी आसु अब बहुत ही थोड़ी है । अब मुझे बाह्य उपचार और औषध की अपेक्षा धर्मोषध का सेवन ही विशेष रूप से करना चाहिए । अल्प अवशेष जीवन के लिए ऐसी आरंभ-समारंभवाली औषधें करने की कोई आवश्यकता नहीं है । इसी कारण से वे श्रावकों को निषेध करते

### निर्वाण

रहे । श्रावकों को बड़ा दुःख हुआ । वे सभी उपवास करके बैठ गये । उन्होंने कहा,- सूरिजी यदि दवा नहीं करने देंगे तो हम भोजन नहीं करेंगे । ऋषभदास कवि तो यहाँ तक लिखता है कि, कई लियों ने उस समय तक के लिए अपने बच्चों तक को ध्वाना (पिलाना) छोड़ दिया जब तक की सूरिजी उपचार कराने के लिए राजी न हों । सारे ऊना में हाहाकार मच गया । सूरिजी के शिष्यों को भी बहुत कष्ट हुआ । अन्त में सोमविजयजी ने सूरिजी से निवेदन किया:- ‘‘महाराज ! ऐसा करने से श्रावकों के मन स्थिर नहीं रहेंगे । जैसे आप दवा लेने से इन्कार करते हैं वैसे ही श्रावक भी अन्नजल ग्रहण नहीं करने की हठ पकड़के बैठते हैं । इसलिए संघ का मान रखने के लिए भी आपको औषध लेने की स्वीकारता देनी चाहिए । यह बात तो आपसे छिपी हुई है ही नहीं कि, पहिले के ऋषियों ने भी रोग के उपस्थित होने पर दवा ग्रहण की है । अतः आपको भी कुछ छूट रखनी ही चाहिए । शुद्ध और थोड़ी दवा ही ग्रहण करने की हाँ कहिए ।’’

सोमविजयजी के विशेष आग्रह से अपनी इच्छा के विरुद्ध भी सूरिजी ने दवा लेने की स्वीकारता दी । संघ प्रसन्न हुआ । लियाँ बच्चों को ध्वाने (पिलाने) लगीं । सुदक्ष वैद्य औषधोपचार करने लगा । प्रतिदिन व्याधि में भी कुछ न्यूनता होने लगी । तो भी शारीरिक अवस्था सुख से ज्ञान, ध्यान, क्रिया करने योग्य न हुई ।

हीरविजयसूरि के प्रधान शिष्य और उनकी गद्दी के अधिकारी विजयसेनसूरि उस समय अकबर बादशाह के पास लाहौर में थे । सूरिजी को गच्छ की बहुत चिन्ता रहा करती थी । उनके हृदय में ये ही विचार बार बार आया करते थे कि, - विजयसेनसूरि यहाँ नहीं हैं । वे बहुत दूर हैं । यदि पास में होते तो गच्छ संबंधी सारी बातें उन्हें बता देता । एक दिन उन्होंने अपने पास के समस्त साधुओं को एकत्रित करके कहा कि, “जैसे हो सके वैसे जल्दी विजयसेनसूरि को यहाँ बुलाने का प्रयत्न करो ।”

साधुओंने विचार करके और किसी आदमी को न भेजकर धनविजयजी ही को रवाना किया। बड़ी बड़ी मंजिलें तै करके वे बहुत जल्दी लाहौर पहुँचे। उन्होंने विजयसेनसूरि से कहा कि, - "सूरिजी विशेष रूप से रुग्ण हैं और आपको बहुत स्मरण किया करते हैं।" इस समाचार को सुनकर विजयसेनसूरि को बड़ा दुःख हुआ। उनका शरीर शिथिल पड़ गया। वे थोड़ी देर में अपने आपको सँभालकर बादशाह के पास गये और सूरिजी की रुग्णता के समाचार सुनाकर बोले कि, - "महाराज ने मुझे शीघ्र ही बुलाया है।" उस समय बादशाह उन्हें अपने पास ही रहने का आग्रह न कर सका। उसने विजयसेनसूरिजी को गुजरात जाने की अनुमति दे दी। अपनी ओर से सूरिजी को प्रणाम करने के लिए भी कहा।

'विजयप्रशस्तिमहाकाव्य' के कर्ता का मत है कि, विजयसेनसूरि जब अकबर बादशाह के पास नंदिविजयजी को रखकर गुजरात में आ रहे थे तब महिमनगर में उन्हें हीरविजयसूरि की बीमारी के समाचार मिले थे।

चाहे कुछ भी हो मगर इतनी बात तो निर्विवाद है कि, सूरिजी की रुग्णता के समय विजयसेनसूरिजी उनके पास नहीं थे। इन्हें उनकी रुग्णता के समाचार दिये गये थे।

इधर जैसे हीरविजयसूरि की रुग्णता बढ़ती गई वैसे ही वैसे विजयसेनसूरि की अविद्यमानता की चिन्ता भी बढ़ती गई। उनके हृदय में बारबार यही विचार आने लगे कि, - वे अब तक क्यों नहीं आये? यदि इस समय वे मेरे पास होते तो अन्तिम अनशनादि क्रियाओं में मुझे बड़ा उल्लास होता।

बहुत विचार और यथासाध्य चेष्टा करने पर भी मनुष्य चल तो उतना ही सकता है जितनी उसमें शक्ति होती है। मनुष्यों के पंख नहीं होते कि, वे झटसे उड़कर इच्छित स्थान पर पहुँच जाएँ। इसी तरह विजयसेनसूरि

साधु होने से यह भी नहीं कर सकते थे कि, वे बादशाह के किसी पवनवेग से चलनेवाले घोड़े पर सवार होकर लाहौर से तत्काल ही ऊना जा पहुँचते।

हीरविजयसूरि जितनी आतुरता से विजयसेनसूरि के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे उतनी ही बल्कि उससे भी विशेष आतुरता विजयसेनसूरि को हीरविजयसूरि की सेवा में पहुँचने के लिए हो रही थी। मगर हो क्या सकता था? बहुत दिन बीत जाने पर भी जब विजयसेनसूरि नहीं पहुँचे तब एक दिन हीरविजयसूरि ने सब साधुओं को अपनेपास बुलाया और कहा: - "विजयसेनसूरि अब तक नहीं आये। मैं चाहता था कि, वे अन्तिम समय में मुझसे मिल लेते तो समाज संबंधी कई बातें मैं उनसे कह जाता। अस्तु। अब मुझे अपनी आयु बहुत ही अल्प मालूम होती है, इसलिए तुम्हारी सबकी सम्मति हो तो मैं आत्मकार्य साधन का प्रयत्न करूँ।"

हीरविजयसूरि के वचन सुनकर साधुओं के हृदय में बड़ा आधात लगा। सोमविजयजी ने कहा: - "महाराज! आप लेशमात्र भी चिन्ता न करें। आपने तो ऐसे विषमकाल में भी आत्मसाधन करने में कोई कमी नहीं की है। त्याग, वैराग्य, तपस्या, ध्यान और क्षान्त्यादि गुणों द्वारा तथा असंख्य जीवों को अभयदान देने और दिलाने द्वारा आपने तो अपने जीवन को सार्थक कर ही लिया है। निश्चित रहिए। आप शीघ्र ही निरोग हो जायेंगे। विजयसेनसूरि भी शीघ्र ही आपकी सेवा में उपस्थित हो जायेंगे।"

सूरिजी बोले: - "तुम कहते हो सो ठीक है। मगर चौमासा शुरू हो जाने पर भी विजयसेनसूरि अब तक नहीं आये। न मालूम वे कब आयेंगे।"

सोमविजयजी ने पुनः कहा: - "महाराज अब आप बहुत जल्दी स्वास्थ्य लाभ करेंगे। विजयसेनसूरि भी शीघ्र ही आयेंगे।"

इस तरह करते करते पर्युषणा पर्व आ पहुँचा । यह बात बड़े आश्वर्य की है कि, इतनी रुग्ण दशा में भी पर्युषणा में कल्पसूत्र का व्याख्यान हीरविजयसूरिजी ने ही पढ़ा था । व्याख्यान पढ़ने के श्रम से उनका शरीर विशेष शिथिल हो गया । पर्युषणा समाप्त हुए । सूरिजी को अपने शरीर में विशेष शिथिलता मालूम हुई । तब उन्होंने भादवा सुदी १० (वि. सं. १६५२) के दिन मध्यरात्रि के समय अपने साथ के विमलहर्ष उपाध्याय आदि सारे साधुओं को एकत्रित कर कहा :-

“मुनिवरो ! मैंने अब अपने जीवन की आशा छोड़ दी है । जो जन्मता है वह मरता ही है । जल्द या देर में सबको यह मार्ग लेना ही पड़ता है । तीर्थकर भी इस अटल सिद्धान्त से छूट नहीं सके हैं । आयुष्म को क्षणमात्र बढ़ाने के लिए भी कोई समर्थ नहीं हुआ है । इसलिए तुम लेशमात्र भी दुखी न होना । विजयसेनसूरि यदि यहाँ होते तो मैं तुम सबकी उन्हें उचित भोलामन देता । कल्याणविजय उपाध्याय भी अन्त में न मिले । अस्तु । अब मैं जो कुछ तुम्हें कहना चाहता हूँ वह यह है कि, तुम किसी भी तरह की चिन्ता न करना । तुम्हारी सारी आशा विजयसेनसूरि पूर्ण करेंगे । वे साहसी, सत्यवादी और शासन के पूर्ण प्रेमी हैं । मेरी यह सूचना है कि, तुम जिस तरह मुझे मानते हो उसी तरह उनको भी मानना और उनकी सेवा करना । वे भी पुत्र की तरह तुम्हारा पालन करेंगे । तुम सभी मेल से रहना और जिससे शासन की शोभा बढ़े वही काम करना । विमलहर्ष उपाध्याय और सोमविजयजी ! तुमने मुझे मुख्यतया बहुत सन्तुष्ट किया है । तुम्हारे कार्यों से मुझको बहुत प्रसन्नता हुई है । मैं तुमसे भी अनुरोध करता हूँ कि, तुम शासन की शोभा बढ़ाना और सारा समुदाय सदा एकता से रहे ऐसे प्रयत्न करते रहना ॥”

साधुओं को उपर्युक्त प्रकार का उपदेश देकर सूरिजी अपने पापों की आलोचना और समस्त जीवों से क्षमायाचना करने लगे । जिस समय वे साधुओं से क्षमा माँगने लगे उस समय साधुओं के हृदय भर आये । आँखों

से आँसू गिरने लगे और गला रुक गया । सोमविजयजी भराई हुई आवाज में बोले :- “गुरुदेव ! आप इन बालकों से क्यों क्षमा माँगते हैं ? आपने तो हमें प्रियपुत्रों की तरह पाला है; पुत्रों से अधिक समझकर आपने हमारी सार संभाल ली है और अज्ञानरूपी अंधकार से निकालकर हमें ज्ञान के प्रकाश में ला बिठाया है । आपके हम पर अनन्त उपकार हैं । आप-पूज्य हमसे क्षमा माँगते हैं इससे हमारे हृदय में व्यथा होती है । हम आपके अज्ञानी-अविवेकी बालक हैं । पद पद पर हमसे आपका अपराध हुआ होगा । समय समय पर हमारे लिए आपका हृदय दुखा होगा । उसके लिए हम आपसे क्षमा माँगते हैं । प्रभो ! आप तो गुण के सागर हैं । आपने जो कुछ किया होगा वह हमारे भले के लिए ही किया होगा । मगर हमने उसे न समझकर आपके विपरीत कुछ विचार किया होगा । हमारे उस अपराध को क्षमा कीजिए । गुरुदेव ! विशेष क्या कहें ? हम अज्ञानी और अविवेकी हैं । अतः मन, वचन और काया से आपका जो कुछ अविनय, अविवेक और असातना हुए हों उनके लिए हमें क्षमा करें ।”

सूरिजी ने कहा :- “मुनिवरो ! तुम्हारा कथन सत्य है; परन्तु मुझे भी तुमसे क्षमा माँगनी ही चाहिए । यह मेरा आचार है । साथ में रहने से कई बार कुछ कहना भी पड़ता है और उससे सामनेवाले का दिल दुखता है । यह स्वाभाविक है । इसलिए मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ ।”

इस प्रकार समस्त जीवों से क्षमा माँगने के बाद सूरिजी ने पाप की आलोचना की और अरिहंत, सिद्ध, साधु और धर्म इन चार शरणों का आश्रय लिया ।

सूरिजी समस्त बातों की तरफ से अपने चित्त को हटाकर अपने जीवन में किये हुए शुभ कार्यों-विनय, वैयावच्च, गुरुभक्ति, उपदेश, तीर्थयात्रा आदि की अनुमोदना करने लगे । ढंडण, दृठप्रहारी, अरणिक, सनत्कुमार, खंधककुमार, कूरगड़, भरत, बाहुबली, बलिभद्र, अभयकुमार,

शालिभद्र, मेघकुमार और धन्ना आदि पूर्व ऋषियों की तपस्या और उनके कष्ट सहन करने की शक्ति का स्मरण करने लगे। तत्पश्चात् नवकार मंत्र का ध्यान कर उन्होंने दश प्रकार की आराधना की।

कुछ देर के लिए सूरिजी मौन रहे। उनके चेहरे से मालूम होता था कि, वे किसी गंभीर ध्यानसागर में निमग्न हैं। उन्हें धेरके बैठे हुए मुनि टगर टगर उनके मुख की ओर देख रहे हैं, और उत्कंठ से गुरुदेव के वचन सुनने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सैकड़ों श्रावक श्राविकाएँ आते हैं और सूरिजी की पूजा कर उदास मुख बैठ जाते हैं।

भादवा सुदी ११ (वि. सं. १६५२) का दिन था। संध्या समय निकट आ रहा था। सूरिजी अब तक ध्यान में मग्न थे। साधु उनके मुखारविंद को देख रहे थे। अकस्मात् उन्होंने आँखें खोलीं। प्रतिक्रमण का समय जाना। सब साधुओं को अपने पास बिठाकर प्रतिक्रमण कराया। प्रतिक्रमण पूर्ण होने के बाद सूरिजी ने अन्तिम शब्दोच्चार करते हुए कहा:-

“भाईयों ! अब मैं अपने कार्य में लीन होता हूँ। तुमने हिम्मत नहीं हारना। धर्मकार्य करने में वीरता दिखाना।” फिर वे आत्मचिन्तन में लीन हुए - “मेरा कोई नहीं है; मैं किसीका नहीं हूँ; मेरा आत्मा ज्ञान-दर्शन चारित्रमय है; सच्चिदानन्दमय है, शाश्वत है; मैं शाश्वत सुख का मालिक होऊँ; मैं आत्मा के सिवाय अन्य सब भावों का त्याग करता हूँ; आहार, उपाधि और इस तुच्छ शरीर का भी त्याग करता हूँ।” इत्यादि वाक्योच्चार कर सूरिजी चार शरणों का स्मरण करने लगे। उस समय सूरिजी पद्मासन में विराजमान हुए। हाथ में माला लेकर जाप करने लगे। चारमालाएँ समाप्त कर पाँचवीं फेरना चाहते थे, इतने ही में माला हाथ से गिर पड़ी। लोगों में हाहाकार मच गया। जगत का हीरा मानवी देह को छोड़कर चला गया। जिस समय सुरलोक में हीर का स्वागत हुआ; सुरघंट

का नाद हुआ। उसी समय भारतवर्ष को गुरुविरहरूपी भयंकर बादलों ने आच्छादित कर लिया।



हीरविजयसूरि का निर्वाण होते ही सर्वत्र हाहाकार मच गया। ऊना के संघ ने यह दुःखदायी समाचार गाँव-गाँव में पहुँचाने के लिए कासीद रवाना किये। जिस गाँव में यह समाचार पहुँचा उसीमें शोक छा गया। गाँवों और नगरों में हड़तालें पड़ने लगीं। हिन्दु, मुसलमान और अन्यान्य धर्मवालों को इस समाचार से दुःख हुआ। जिन पुरुषरत्नों की विद्यमानता से भारतवर्ष की राष्ट्रीय और धार्मिक स्थिति में बहुत से सुधार हुए थे; जिनके कारण भारतवासी कुछ सुख के दिन देखने लगे थे उनमें से एक रत्न चल बसा। उसके चले जाने से दुःख किसे न होता ? ऐसी कमी से-जो पूरी नहीं हो सकती थी - किसके हृदय पर आघात न लगा होगा ?

दूसरी तरफ सूरिजी की अन्त्येष्टि क्रिया के लिए ऊना और दीव का संघ तैयारी करने लगा। उन्होंने तेरह खंड का एक विमान बनवाया। वह कथिया मखमल और मशरू से मढ़ा गया था। मोती के झूमकों, चाँदी के घंटों, स्वर्ण की घूघरियों, छत्र, चामर, तोरण और चारों तरफ अनेक प्रकार की फिरती हुई पुतलियों से वह ऐसा सुंदर सजाया गया था कि, देखनेवाले उसको एक देवविमान ही समझने लगे। कहा जाता है कि, उसको बनाने में दो हजार लाहरियाँ खर्च हुई थीं। उनके अलावा दो ढाई हजार लाहरियाँ दूसरी खर्च हुई थीं।

केशर, चंदन और चूआ से सूरिजी के शरीर पर लेप किया गया। उसके बाद शब पालकी में रक्खा गया। घंट नाद हुआ। बाजे बजे। प्रतिष्ठित पुरुषों ने पालकी को उठाया। जय जय नंदा ! जय जय भद्रा ! के शब्दों से आकाशमंडल गूँज उठा। हजारों लोग अपनी श्रद्धा के अनुसार रुपये पैसे और बादाम उछालने लगे। मार्ग में पुष्पों की वृष्टि होने लगी।

आबाल वृद्ध नरनारी अपने मकानों की छतों पर और झरोखों पर चढ़ चढ़कर भावपूर्वक वंदना करने लगे। पालकी के पीछे हजारों आदमी सिर झुकाए चले जा रहे थे। गाँव के बड़े बड़े मार्गों से निकलकर पालकी आंबावाड़ी में पहुँची। वहाँ निर्जीव भूमि में उत्तम जाति के चंदन की चिता रची गई। सूरिजी का शव उसमें रखा गया। चिता में आग लगाने का कोई साहस नहीं करता था। सबकी आँखों में फिर से पानी भर आया। सूरिजी के मुख की तरफ देखते हुए सभी स्थिर होकर खड़े रहे। कुछ लोग गदगद कंठ से बोले:— “है गुरुदेव! आप हमें मधुर देशना दीजिए! है हीर! आप धर्म के विचार प्रकट कीजिए! देव! आपके भक्त रुदन कर रहे हैं तो भी आप बोलते क्यों नहीं हैं? क्यों आप अपना पवित्र हाथ हमारे सिर पर रख कर हमें पवित्र नहीं बनाते हैं? आप हमें रोते छोड़कर कहाँ जाते हैं? हम किसके दर्शन करके पवित्र होंगे? आपके सिवा हमारे संदेहों को कौन दूर करेगा? हे गुरु, आपकी मधुरवाणी अब हम कहाँ सुनेंगे? हमारे समान संसार में फँसे हुए प्राणियों का उद्धार कौन करेगा?”

अन्त में हृदय कड़ाकर लोगों ने चिता में अग्नि लगाई। चिता में पन्द्रह मन चंदन, तीन मन अगर, तीन सेर कपूर, दो सेर कस्तूरी, तीन सेर केसर और पाँच सेर चूआ डाला गया था।

सूरिजी का मानवी शरीर भस्मसात् हो गया। केवल यशः शरीर संसार में रह गया। सूरिजी के शरीर संस्कार में सब मिलाकर सात हजार ल्याहरियाँ खर्च हुई थीं। समुद्र के किनारे अमारी पाली गई। समुद्र में कोई जाल न डाले इस बात का प्रबंध किया गया। गुरु-विरह से दुःखी साधुओं ने तीन तीन दिन तक उपवास किये। अग्नि संस्कार करके श्रावकों ने मंदिर में जाकर देववंदन किया। और फिर साधुओं का वैराग्यपूर्ण उपदेश सुन सब अपने घर गये।

जिस बागीचे में हीरविजयसूरि का अग्नि संस्कार हुआ था वह बागीचा और उसके आसपास की बाईस बीघे<sup>१</sup> जमीन अकबर बादशाह ने जैनों को दे दी थी। इसी बागीचे में— जहाँ सूरिजी का अग्नि संस्कार हुआ था— दीव की लाड़कीबाई ने एक स्तूप बनाकर उस पर सूरिजी की पादुका<sup>२</sup> स्थापन की थी।

ऋ ऋ ऋ ऋ

हीरविजयसूरि के निर्वाण के पन्द्रह दिन बाद, कल्याणविजयजी उपाध्याय ऊना पहुँचे थे। उन्हें सूरिजी के स्वर्गवास के समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ। सूरिजी के अद्वितीय गुण उन्हें बार बार याद आने लगे और जैसे जैसे वे गुण आते वैसे ही वैसे उनका हृदय भर आता और आँखों से पानी निकल पड़ता। कल्याणविजयजी को श्रावकों और साधुओं ने अनेक प्रकार से समझाकर शान्त किया। फिर उन्होंने अग्नि संस्कारवाले स्थान पर जाकर स्तूप के दर्शन किये।

दूसरी तरफ लाहौर से रवाना होकर विजयसेनसूरि हीरविजयसूरि के निर्वाणवाले दिन कहाँ तक पहुँचे थे इस बात की खबर न थी। विजयसेनसूरि भी विश्राम लिए बिना, इस इच्छा से ऊना की तरफ बढ़े आ रहे थे कि, जल्दी जाकर गुरु के चरणों में मस्तक रक्खूँ और अपने आपको पावन करूँ। मगर प्रबल भावी के सामने किसीका क्या जोर चल सकता है? विजयसेनसूरि के भाग्य में गुरु के अन्तिम दर्शन नहीं लिखे

१. देखो ‘हीरसौभाग्य काव्य’ सर्ग १७, श्लोक १९५, पृष्ठ ९०९

२. यह पादुका अब भी मौजूद है। उस पर जो लेख है उससे विदित होता है कि, इसकी प्रतिष्ठा वि. सं. १६५२ के कार्तिक वदि ५ बुधवार के दिन विजयसेनसूरि ने की थी। लेख में सूरिजी के निर्वाण की तिथि (भाद्रा सुदी ११) भी दी गई है। हीरविजयसूरिजी ने जो बड़े बड़े कार्य किये थे उनका उल्लेख भी इसमें है। यह लेख ‘श्रीअजारापार्श्वनाथजी पंचतीर्थ माहात्म्य’ और ‘जीर्णोद्धार का द्वितीय रीपोर्ट’ नाम की पुस्तक के ३४ वें पृष्ठ में प्रकाशित हुआ है।

थे इसलिए उनके बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्हें दर्शन नहीं हुए । भादवा वदि ६ के दिन विजयसेनसूरि पाटण में मंदिर में पहुँचे उस समय पाटण के श्रावक हीरविजयसूरि के निर्वाण समाचार सुनकर देववंदन कर रहे थे । विजयसेनसूरि ने इस सुभाशाको लिए हुए पाटण में प्रवेश किया था कि, पाटण में मुझे गुरुजी के स्वास्थ्य के समाचार मिलेंगे; उनको तो वहाँ पहुँचने पर विधातक समाचार मिले । सूरिजी की निर्वाण की बात सुनकर उनके हृदय में एक आघात लगा । थोड़ी देर निस्तब्ध होकर वे खड़े रहे । अन्त में मूर्छ्छित होकर गिर पड़े । थोड़ी देर बाद जब उनकी मूर्छ्छा गई तब वे बेवैह होकर इधर उधर घूमने लगे । कभी बैठ जाते, कभी उठ खड़े होते बड़बड़ते, — “अरे यह क्या हुआ ? मैं ऊना जाकर किसको बाँटूँगा ? अब वहाँ क्या है ? गुरुदेव मुझे दर्शन देने को भी न ठहरे ?” अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प उनके मन में उठने लगे । वे न आहार करते थे न जल पीते थे; न उपदेश देते थे न किसीके साथ बातचीत ही करते थे । जब कभी बोलते तो यही बोलते “अरे हीर-हंस मान-सरोवर से उड़ गया ! प्रभो ! हमको बीच में छोड़कर कहाँ चले गये ? अब हमारी क्या दशा होगी ? हम किसकी प्रेमछाया में रहेंगे ? जैन-शासन का क्या होगा ?” इसी तरह तीन दिन निकल गये ।

चौथे दिन पाटण का संघ एकत्रित हुआ । उसने विजयसेनसूरि को अनेक तरह से समझाया; आश्वासन दिया । इससे उनका चित्त कुछ स्थिर हुआ । उन्होंने अपने हृदय को मजबूत बनाया; धैर्य धारण किया । उस दिन उन्होंने कुछ आहारपानी लिया । उसके बाद वे अपने साथ के मुनियों सहित ऊना पहुँचे । वहाँ सूरिजी की पादुका की भाव सहित बंदना की ।

यहाँ विजयसेनसूरि, हीरविजयसूरि के पाट पर बैठे । हीरविजय-सूरि की तरह इन्होंने भी जैनधर्म की विजयवैजयन्ती फर्राई ।

ऋग्वेद  
ऋग्वेद  
ऋग्वेद  
ऋग्वेद

इस प्रकरण को समाप्त करने के पहले हीरविजयसूरि के निर्वाण के समय एक आश्वर्यकारक घटना हुई थी उसका उल्लेख करना भी आवश्यक है ।

कवि ऋषभदास लिखता है कि, — जिस दिन हीरविजयसूरि का निर्वाण हुआ था उस दिन रात के समय, जहाँ सूरिजी<sup>\*</sup> का अग्नि संस्कार हुआ था वहाँ पास के खेत में रहनेवाले एक नागर बनिए ने नाचरंग होते देखा था । सबेरे ही गाँव में जाकर उसने लोगों को यह बात सुनाई । लोगों के झुंड के झुंड बगीचे में आने लगे । वहाँ उन्हें नाचरंग तो कुछ नहीं दिखाई दिया; मगर आम के पेड़ों पर फल दिख पड़े । किसी पर मौर के साथ छोटे छोटे आम थे; किसी पर जाली पड़े हुए आम थे और किसी पर परिपक्व हो रहे थे । कई ऐसे आम के पेड़ भी फलों से भरे हुए थे जिन पर कभी फल आता ही न था और जो वंध्य आम के नाम से प्रसिद्ध थे । भादवे का महीना और आम ! लोगों के आश्वर्य का कोई ठिकाना न रहा । एक दिन पहले जिन वृक्षों पर मौर का भी ठिकाना न था दूसरे दिन उन्हीं वृक्षों को फलों से लदा देखकर किसे आश्वर्य न होगा ?

श्रावकों ने कुछ आम उतार लिए और उनमें से अहमदाबाद, खम्भात और पाटण आदि शहरों में थोड़े थोड़े भेजे । अकबर और अबुलफजल के पास भी उनमें से आम भेजे गये । जिन लोगों ने वे आम देखे उनको अत्यंत आश्वर्य और आनंद हुआ । सम्राट को भी सूरिजी के पुण्य बाहुल्य पर अभिमान हुआ । सूरिजी के प्रति उसकी भक्ति अनेक गुनी बढ़ गई । उसको और अबुलफजल को सूरिजी के स्वर्गवास का बहुत दुःख हुआ । वह अनेक प्रकार से सूरिजी की स्तुति करने लगा । कवि ऋषभदास ने बादशाह के मुख से सूरिजी की स्तुति जो शब्द कहलाये हैं उन्हीं के भाव के साथ हम इस प्रकरण को समाप्त करते हैं :-

“उन जगद्गुरु का जीवन धन्य है जिन्होंने सारी जिन्दगी दूसरों का उपकार किया और जिनके मरने पर (असमय में) आप्रफले और जो स्वर्ग में जाकर देवता बने ॥ ५ ॥

ऋ ॠ ॠ ॠ इस जमाने में उनके जैसा कोई सच्चा फकीर न रहा  
ऋ ॠ ॠ ॠ ॥ ६ ॥

जो सच्ची कमाई करता है वही संसार से पार होता है । जिसका मन पवित्र नहीं होता है उसका मनुष्य भव व्यर्थ जाता है ॥ ७ ॥

## प्रकरण तेरहवाँ ।

### सम्राट का शेषजीवन ।

अपने प्रथम नायक हीरविजयसूरि के संबंध में बहुत कुछ कहा जा चुका है । अब अपने दूसरे नायक सम्राट अकबर के अवशिष्ट जीवन पर कुछ प्रकाश डाला चायगा । यद्यपि अकबर के गुण-अवगुण के संबंध में तीसरे प्रकरण में और उसके किये हुए जीवदया संबंधी कार्यों के विषय में पाँचवें प्रकरण में उल्लेख हो चुका है तथापि अकबर के जीवन से संबंध रखनेवाली अन्यान्य बातों की उपेक्षा कर यदि पुस्तक समाप्त कर दी जाय तो उतने अंशों में न्यूनता रह जाय । इसलिए इस प्रकरण में अकबर के जीवन की अवशिष्ट बातों का उल्लेख किया जायगा ।

यह प्रसिद्ध बात है कि अकबर बचपन ही से तेजस्वी और चंचल स्वभाव का था । तीसरे प्रकरण में इस विषय में उल्लेख हो चुका है । यद्यपि उसको अक्षरज्ञान प्राप्त करने की रुचि नहीं थी, तथापि नई नई बातें जानने और विविध कलाएँ सीखने के लिए वह इतना आतुर रहता था, जितना अफीमची वक्त पर अफीम के लिए रहता है । बाल्यावस्था ही से वह चाहता था कि, मैं जगत् में प्रसिद्ध होऊँ और लाखों करोड़ों मनुष्यों को अपने आज्ञापालक बनाऊँ । राज्यगद्दी पर बैठने के बाद भी जब तक वह बहेरामखाँ के आधीन रहा तब तक अपनी भावनाएँ पूर्ण न कर सका । जब वह बहेरामखाँ के बंधन से मुक्त हुआ और राज्य की पूर्ण सत्ता अधिकार में कर चुका तब उसने सोचा कि, मैं अब अपनी इच्छानुसार हर एक कार्य कर सकूँगा । अकबर का जीवन यह बात अच्छी तरह से प्रमाणित करता है कि, पुरुषार्थी जब चाहते हैं तभी अपने कार्य में सफलता लाभ कर सकते हैं । राज्य की पूर्ण सत्ता अपने हाथ में लेने के बाद अकबर अपनी इच्छाएँ पूर्ण करने के प्रयत्न प्रारंभ किये ।

अकबर के कामों से हम यह कह सकते हैं कि, उसके मन में तीन चार बातें खास तरह से चक्र लगा रही थीं। प्रथम यह कि, उसके पहले वाले राजा जैसे, अपना नाम स्थिर कर गये थे वैसे ही वह भी अपना नाम अमर कर जाय। दूसरी यह कि, सारे सूबेदार उसकी आज्ञा पालें। तीसरी यह कि, उसके पिता के समय में जो राज्य स्वाधीन हो गये हैं उन्हें वह वापीस अपने आधीन कर ले। और चौथी यह कि, राज्य की अन्तर्व्यवस्था को - जो अनेक परिवर्तनों के कारण खराब हो गई थी - पुनः सुधार ले। इन्हीं चार बातों के पीछे उसने अपना सारा जीवन बिताया था।

तीसरे प्रकरण में कहा गया है, उसके अनुसार 'दीनेइलाही' नामक धर्म चलाने में उसका हेतु ख्याति लाभ करने के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं था। हाँ यह सच है कि, वह इस हेतु को पूर्ण करने में सफल नहीं हुआ; कारण, - उसका चलाया हुआ धर्म उसके साथ ही लुप्त हो गया। तो भी इतना तो कहना ही पड़ेगा कि, उसने अपने जीवन में उसका, यदि पूर्णरूप से नहीं तो विशेष अंशों में आनंद अवश्यमेव ले लिया था। उसके धर्म को माननेवाले-यदि सच्ची श्रद्धा से नहीं तो भी दाक्षिण्यता से या स्वार्थ से ही - अच्छे हिन्दु और मुसलमान थे। उसके धर्म में जो लोग सम्मिलित हुए थे उनमें से मुख्य के नाम ये हैं<sup>१</sup> :-

- |                        |                                 |
|------------------------|---------------------------------|
| १ - अबुलफ़ज़्ल;        | २ - फैज़ी;                      |
| ३ - शेखमुबारिक नागौरी; | ४ - ज़फ़रबैग आसफ़खाँ;           |
| ५ - कासम काबुली;       | ६ - अब्दुल्सनद;                 |
| ७ - आज़मखाँ कोका;      | ८ - मुल्ला शाहमुहम्मद शाहाबादी; |
| ९ - सूफ़ी अहमद;        | १० - सदर जहान मुफ़्ती;          |
| ११-१२ - सदर जहान       | १३ - मीर शरीफ़ अमली;            |

१. प्रो. आजाद की उर्दू में लिखी हुई 'दबारे अकबरी' नाम की पुस्तक का पृ. ७३ वाँ देखो।

- मुफ़्ती के दो लड़के; १४ - सुल्तान ख्वाजा सदर;  
 १५ - मिर्ज़ाजानी हाकमठट्ठा; १६ - नकी शोस्तरी;  
 १७ - शेखजादा गोसाला बनारसी; १८ - बीरबल;

'दी हिस्टरी ऑफ अर्यन स्कूल इन इण्डिया' के लेखक मि. इ. वी. हेवेल लिखते हैं कि, अकबर के धर्म में जो लोग सम्मिलित हुए थे वे चार भागों में विभक्त थे।

एक भाग ऐसा था जो अपने सारे दुनियावी लाभ बादशाह के अर्पण करने को तैयार रहता था।

दूसरा भाग ऐसा था जो अपना जीवन बादशाह के लिए अर्पण करने को तत्पर रहता था।

तीसरा भाग ऐसा था जो अपना मान बादशाह के अर्पण करता था। और,

चौथे भाग के मनुष्य ऐसे थे जो बादशाह के धर्म संबंधी विचारों को अक्षरशः अपने ही विचार समझते थे।

उपर्युक्त चार प्रकार के मनुष्यों में से चौथे प्रकार के मनुष्य यद्यपि बहुत ही थोड़े थे; परन्तु वे ऐसे थे कि, जो अकबर को वास्तविक खलीफा समझते थे। यह बात भी हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि, अकबर ने चारों प्रकार के लोगों की संख्या बढ़ाने में कभी अपनी सत्ता का उपयोग नहीं किया था। इतना ही नहीं, यदि कोई उसके विचारों का विरोध करता था तो उसकी दलीलें वह ध्यानपूर्वक सुनता था और शान्ति के साथ उनका उत्तर देता था।

उसने अपना धर्म फैलाने में बहुत ज्यादा शान्ति और सहनशीलता से काम लिया था। और उसके जीवन में तो उसके महत्व की इतनी ख्याति हो गई थी कि, श्रद्धालु और भोले दिल के हिन्दु-मुसलमान उसकी

मानता मानने लगे थे । कोई पुत्र-प्राप्ति के लिए, कोई धन-प्राप्ति के लिए, कोई स्नेही के संयोग के लिए और कोई शत्रु का दमन करने के लिए; किसी न किसी हेतु से, लोग उसकी मानता मानते थे ! अबुल्फजल लिखता है कि, -

"Other Multitudes ask for lasting bliss, for an upright heart, for advice how best to act, for strength of body, for enlightenment, for the birth of a son, the reunion of friends, a long life, increase of wealth, elevation in rank, and many other things. His Majesty, who knows what is really good, gives satisfactory answers to every one, and applies remedies to their religious perplexities. Not a day passes but people bring cups of water to him, beseeching him to breathe upon it."<sup>१</sup>

**भावार्थ** - शाश्वत सुख, प्रामाणिक हृदय, अच्छे आचरण की सलाह, शारीरिक बल, सुसंस्कार, पुत्रप्राप्ति, मित्रों का पुनः समागम, दीर्घायु, धन-सम्पत्ति और उच्च पदवी आदि अन्यान्य अनेक मुरादे लेकर झुंडके झुंड मनुष्य सप्राट अकबर के पास आते थे । सप्राट श्रेय का जाननेवाला था, इसलिए हरएक को वह सन्तोषप्रद उत्तर देता था और उनकी धार्मिक समस्याओं को हल करने की योजनाएँ गढ़ता था । ऐसा एक भी दिन नहीं बीतता था जिस दिन लोग अकबर के पास से मंत्रोच्चारण द्वारा पानी के कटोरे पवित्र करवाने के लिए न आते हों ।

लोग अकबर की मानता रखते थे, इस बात के इंतिहासों में अनेक प्रमाण हैं ।

कवि क्रष्णभद्रास ने 'हीरविजयसूरिरास' में बादशाह के चमत्कारों के अनेक उदाहरण दिये हैं । उनके एक दो प्रमाण पाठकों के विनोदार्थ यहाँ दिये जाते हैं ।

१. Ain-i-Akbari, Vol. 1, by H. Blochmann M. A. P. 164.

एक बार नवरोज के<sup>१</sup> दिनों में स्त्रियों का बाजार भरा । बादशाह स्वयं

१. नवरोज—यह पारसियों के त्योहारों का दिन है । अकबर ने अपने अनेक त्योहारों के दिनों के उपरान्त पारसियों के कुछ त्योहारों को भी अपने त्योहार माने थे । उन्हींमें नवरोज का दिन भी शामिल है । अकबर पारसियों के जिन त्योहारों को अपने त्योहार माने हैं उनके नाम 'आइन-ई-अकबरी', 'अकबरनामा', 'बदाऊनी' और 'मीराते अहमदी' आदी अनेक ग्रंथों में आये हैं । 'अकबरनामे' के दूसरे भाग के अंग्रेजी अनुवाद के २४ वें पृष्ठ में और 'आइन-ई-अकबरी' के प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवाद के पृ. २७६ में निम्नलिखित दिन गिनाये गये हैं :-

१ नये बरस का पहला दिन;	१ मिहर का १६ वाँ दिन;
१ फरवर दीन का १९ वाँ दिन;	१ आवान का १० वाँ दिन;
१ अरदी बहिश्त का ३ रा दिन;	१ आजर का ९ वाँ दिन;
१ खुरदाद का ६ ठा दिन;	३ दाई का ८-१५-२३ वाँ दिन;
१ तीर का १३ वाँ दिन;	१ बहमन का २ रा दिन;
१ अमरदाद का ७ वाँ दिन;	१ अस्फंदार मुज का ५ वाँ दिन;
१ शहरीवर का ४ था दिन;	१५ जोड़.

इस प्रकार १५ दिन गिने गये हैं; परन्तु 'मीराते अहमदी' का बर्ड ने अंग्रेजी अनुवाद किया है । उसके ३८८ वें पृष्ठ में १३ दिन ही गिने गये हैं । उसमें नये बरस का १ ला दिन और दाई का ८ वाँ दिन ये दो दिन नहीं गिने गये हैं । दूसरा यह भी भेद है कि, 'अकबरनामा' और 'आइन-ई-अकबरी' के मत से उपर्युक्त लिस्ट में लिखे अनुसार अस्फंदारमुज का ५ वाँ दिन गिना गया है और 'मीराते अहमदी' में अस्फंदारमुज का ९ वाँ दिन बताया गया है । इन दोनों मतों में अगर बदाऊनी का मत भी शामिल कर लिया जाय तो, बदाऊनी के दूसरे भाग में अंग्रेजी अनुवाद के ३३१ वें पेज में जो उल्लेख है उससे १४ दिन ही होते हैं । क्योंकि उसने, फरवरदीन महीने के उन्नीस वें दिन को वर्षारंभ के उत्सव का एक अंश माना है । अभिप्राय कहने का यह है कि, फरवरदीन के १ ले और उन्नीसवें में से किसीने १ ला दिन लिया है और किसीने १९ वाँ और किसीने दोनों ही लिये हैं । इन दोनों मतों में कोई महत्व की बात नहीं है; क्योंकि फरवरदीन का १९ वाँ दिन भी फरवरदीन के १ ले दिन का एक अंश ही है । यानी वह नवरोज के उत्सवों का अन्तिम दिन है । मगर 'दायी' के ८, १५, और २३ वें दिनों में से किसीने १५ वाँ और किसीने २३ वाँ गिना

उस बाजार में गया था । वहाँ उसने एक कपड़े बेचती हुई लड़ी से पूछा:-  
“क्या तेरे कोई बाल-बच्चा नहीं है ? उसने उत्तर दिया :- “आपसे छिपा  
है । ऐसा क्यों हुआ इसका कारण समझ में नहीं आता । इसके अलावा अस्फंदारमुज  
का किसीने ५ बाँ दिन बताया है और किसीने ९ बाँ । यह मतभेद भी खास विचारणीय  
है ।

उपर्युक्त दिनों में जो नये बरस का पहला दिन गिना गया है वही नवरोज का  
दिन है । यह दिन फरवरदीन महीने का प्रथम दिन है । इसका परिचय ‘मीराते  
अहमदी’ के अंग्रेजी अनुवाद के पृ. ४०३-०४ में इस प्रकार कराया गया है :-

“Let him do everything that is proper to be done at the festival  
of the NaoRoz, a feast first consequence, which Commences at the  
time when the sun enters Aries and is the beginning of the month of  
Farvardin.”

भावार्थ - नवरोज के दिन उचित कार्य करने चाहिए । नवरोज आवश्यक  
त्योहार है । यह धनराशी में सूर्य दाखिल होता है तब प्रारंभ होता है; और यह  
फरवरदीन महीने के प्रारंभ में होता है ।

इसी तरह दाविस्तान के प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवाद के २६८ वें पेज के  
नोट में लिखा है कि, -

“The Naoroz is the first day of the year, a great festival.”

अर्थात् - नवरोज वर्ष का प्रथम दिन है और वह बड़े त्योहार का दिन है ।

इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि, नवरोज का दिन तो एक (वर्ष का पहला  
दिन) ही था, परन्तु उसके निमित्त १९ दिन तक उत्सव होता था । यह बात आइन-  
ई-अकबरी के प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवाद के २७६ वें पेज में आये हुए  
निम्नलिखित वाक्यों से स्पष्ट हो जाती है, -

“The new year day feast. It Commences on the day when the  
sun is his splendour moves to Aries and lasts till the nineteenth day  
of the month (Forvardin). Two days of this period are considered great  
festivals, when much money and numerous other things are given  
away as presents : the first day of the month of Farvardin & the  
nineteenth which is the time of the sharaf.”

हुआ क्या है ?” बादशाह ने उसी समय थोड़ा सा पानी मंत्र कर उसे दिया  
और कहा :- “इसको पीना; धर्म के कार्य करना; किसी जीव को मृत-

अर्थात् - नये बरस के दिन का उत्सव उस दिन प्रारंभ होता है जिस दिन सूर्य  
गनराशी में जाता है । और यह उत्सव फरवरदीन महीने में १९ वें दिन तक चलता  
है । इन दिनों में से दो दिन बहुत बड़े त्योहार के माने गये हैं । उनमें बहुत सा धन  
और अनेक वस्तुएँ भेट में दी जाती हैं । ये दो फरवरदीन महीने के, पहला और  
उन्हींसर्वां, दिन हैं । यह अन्तिम दिन शरफ (अर्थात् गति) का है ।

इतना विवेचन हो जाने के बाद यह बात सहज ही समझ में आ जाती है कि,  
नवरोज का दिन फरवरदीन महीने का पहला दिन है । इसका उत्सव उन्हीं दिन तक  
होता था । इसलिए उन्हीं दिनों को कोई यदि किसी अपेक्षा से नवरोज के दिन कहता  
है तो उसका कथन व्यवहार दृष्टि से सत्य माना जा सकता है । जैसे, जैनियों में सिर्फ  
एक ही दिन (भादवा सुदी ४ का) पर्युषण है, तो भी उसके लिए आठ दिन तक  
उत्सव होता है इसलिए लोग आठो दिनों को पर्युषण के दिन मानते हैं । मगर  
फरवरदीन महीने के इन उन्हीं दिनों को छोड़कर ऊपर जो दूसरे दिन गिनाये गये  
हैं । वे हरगिज नवरोज के दिन नहीं माने जा सकते हैं ।

उपर्युक्त उत्सव के दिनों में लोग आनंद में मग्न होकर उत्सव करते थे । प्रत्येक  
प्रहर में नकरे बजाये जाते थे; गायक गाते थे । इन त्योहारों के पहले दिन से (नवरोज  
के दिन से) तीन रात तक रंग बिरंगे दीपक जलाये जाते थे । और दूसरे त्योहारों में  
तो केवल एक रात ही दीपक जलाये जाते थे ।

ऊपर कहे हुए उत्सव के दिनों में से प्रत्येक महीने के तीसरे उत्सव के दिन सम्राट  
अनेक प्रकार की वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, बहुत बड़ा बाजार लगवाता था ।  
उसमें अपनी दुकानें लगाने के लिए उस समय के अच्छे अच्छे सभी व्यापारी आतुर रहते  
थे । दूर दूर के देशों में से सभी प्रकार का माल मंगवाकर रखते थे ।

अन्तःपुर की स्त्रियाँ उसमें आती थीं । अन्यान्य स्त्रियों को भी उसमें आमंत्रण  
दिया जाता था । खरीदना और बैचना तो सामान्य ही था । खरीदने योग्य वस्तुओं  
का मूल्य बदलने में अथवा अपने ज्ञान को बढ़ाने में सम्राट उत्सवों का उपयोग करता  
था । ऐसा करने से उसको राज्य के गुप्त भेद, लोगों का चाल-चलन और प्रत्येक  
कार्यालय तथा कारखाने की भली बुरी व्यवस्थाएँ मालूम हो जाती थी । ऐसे दिनों  
का नाम सम्राट ने ‘खुशरोज’ रखा था ।

मारना; और मांस भी मत खाना । यदि तू मेरे कथनानुसार करेगी तो तेरे बहुतसी सन्तानें होंगी ।”

सचमुच ही उसके एक एक करके बारह बाल बच्चे हुए ।

दुसरा एक उदाहरण और भी दिया गया है कि - “आगरे का एक सौदागर व्यापार के लिए परदेश गया था । रास्ते में उसे उसके कई ऋणदाता मिले । सौदागर ने सोचा कि, अब मेरे पास कुछ भी नहीं बचेगा, ये लोग मेरा सब कुछ ले लेंगे । उसने अकबर की मानता मानी कि, अगर मेरा माल बच जायगा तो चौथा भाग मैं अकबर के भेट कर दूँगा ।

उसका माल बच गया । व्यापार में भी उसको अच्छा नफ़ा रहा । उसने दूसरी बार और व्यापार प्रारंभ कर नफ़े का चौथा भाग अकबर के भेट करने की मानता मानी । उसमें भी उसे अच्छा नफ़ा मिला । इस प्रकार उसने तीन बार मानता मानी और तीनों बार लाभ उठाया । मगर उसके मन में बेर्इमानी आई और उसने नफ़े का चौथा हिस्सा अकबर के पास नहीं पहुँचाया ।”

जब स्त्रियों का यह बाजार समाप्त हो जाता था तब सप्राट पुरुषों के लिए बाजार भरवाता था । प्रत्येक देश के व्यापारी अपनी वस्तुएँ बेचने को लाते थे । सप्राट स्वयं हर एक तरह से लेन-देन को देखता था । जो लोग बाजार में पहुँच सकते थे वे वस्तुएँ खरीदने में आनंद मानते थे । उस समय लोग सप्राट को अपने दुःखों की कथाएँ भी सुनाया करते थे । कोई उन्हें ऐसा करने से रोक नहीं सकता था । व्यापारी अपनी परिस्थितियाँ सप्राट को समझाने और अपना माल बताने का यह अवसर कभी नहीं चूकते थे । जो प्रामाणिक होते थे उनकी विजय होती थी और जो अनीतिवान होते थे उनकी जाँचपड़ताल की जाती थी ।

इस समय खजानची और हिसाबी भी मौजूद रहते थे । वे तत्काल ही माल बेचनेवालों को रुपया चुका देते थे । कहा जाता है कि, व्यापारियों को ऐसे प्रसंग में अच्छा नफ़ा मिलता था ।

अकबर ने एक बार उस सैदागर को बुलाकर कहा :- “चौथा हिस्सा क्यों नहीं लाता है ?”

सैदागर को आश्वर्य हुआ । वह कहने लगा :- “सचमुच ही आप तो जागते पीर हैं । मैंने यद्यपि यह बात किसी दूसरे से न कही थी; परन्तु आपको तो मालूम हो ही गई ।” तत्पश्चात् वह अनेक प्रकार से अकबर की स्तुति कर चौथा भाग दे गया ।”

एक बार एक स्त्रीने मानता मानी कि, यदि मेरे पुत्र होगा तो मैं उत्सव पूर्वक बादशाह को बधाऊँगी और दो श्रीफल भेट करूँगी ।

समय पर स्त्री के पुत्र हुआ । उसने उत्सवपूर्वक अकबर को बधाया और उसके सामने एक श्रीफल रखा । अकबर ने कहा :- “मानता दो की मानी थी और भेट में एक ही कैसे रखा ?” स्त्री बड़ी लज्जित हुई । उसने तत्काल ही दूसरा श्रीफल सामने रखा । वगेरः वगेरः ।

उपर्युक्त कथाओं में सत्यांश कितना है इसका निर्णय इस समय होना असंभव है । चाहे कुछ भी हो, यह सच है कि, उसकी मानता मानी जाती थी । अनेक लोग उसे ईश्वर का अवतार मानते थे । इसमें मतभेद नहीं हैं । श्रीयुत बंकिमचंद्र लाहिड़ी ने अपने सप्राट अकबर नामक बंगाली पुस्तक के २८२ वें पृष्ठ में लिखा है कि -

“से समयेर हिन्दू ओ मुसलमान सप्राट के ऋषिवत् ज्ञान करित, ताँहार आशीर्वादे कठिन पीड़ा आरोग्य हय, पुत्र कन्या लाभ हय, अभीष्ट सिद्ध हय, एङ् रूप सकले विश्वास करित । एङ् जन्य प्रत्यह दले दले लोक ताँहार निकट उपस्थित हइया आशीर्वाद प्रार्थना करित ।”

अर्थात् - उस समय के हिन्दु और मुसलमान सप्राट को ऋषि के समान समझते थे । सभी को विश्वास था कि, उसके आशीर्वाद से कठिन

पीड़ा मिटती है, सन्तान की प्राप्ति होती है और मनोवांछित फल मिलता है। इसीलिए झुंड के झुंड लोग हमेशा उसके पास आते थे और उससे आशीर्वाद चाहते थे।

इतना होन पर भी एक बात ऐसी है कि, जिससे आश्वर्य होता है। वह यह है, - एक तरफ से कहा जाता है कि, अकबर का उपर्युक्त प्रकार से माहात्म्य फैला था और दूसरी तरफ से हम देखते हैं कि, उसका माहात्म्य और उसका धर्म उसके साथ ही विलीन हो गये। यह कैसे हुआ? इसके संबंध में विद्वान् अनेक प्रकार के तर्क करते हैं। कई कहते हैं कि, अकबर की महिमा बढ़ानेवाले और उसके धर्म का गुणगान करनेवाले अबुलफलज और फैजी जैसे लोग अकबर के पहले ही संसार छोड़कर चले गये थे। इसलिए उसके धर्मशक्ट को चलानेवाला कोई भी न रहा। इसलिए उसका धर्म लुप्त हो गया। कई कहते हैं कि, अकबर के दीने इलाही धर्म को किसीने सच्चे दिल से स्वीकार नहीं किया था, इसीलिए वह अकबर के साथ ही समाप्त हो गया था। कई यह भी कहते हैं कि, धर्मस्थापक में जो अचल श्रद्धा होनी चाहिए वह अकबर में नहीं थी। जब किसी धर्म के संस्थापक ही में पूर्ण श्रद्धा नहीं होती है तब उसके अनुयायियों में तो हो ही कैसे सकती है? चाहे किसी कारण से हो मगर अकबर की चमत्कारों से संबंध रखनेवाली महिमा और उसका धर्म उसके बाद न रहे।

अकबर ने उसके धर्मानुयायियों में एक बात और भी चलाई थी। वह थी अभिवादन संबंधिनी। इस समय दो हिन्दु जब मिलते हैं तब वे 'जुहार' या 'जय श्रीकृष्ण' आदि बोलते हैं। दो मुसलमान जब मिलते हैं तब एक एक कहता है 'सलामालेकम' दूसरा उत्तर देता है 'वालेकमसलाम' दो जैन मिलते हैं तब वे 'प्रणाम' या 'जय जिनेंद्र' बोलते हैं। अकबर के अनुयायी जब मिलते थे तब वे इनमें से एक भी बात

नहीं करते थे। उनका अभिवादन तीसरे ही प्रकार का था। एक कहता था 'अल्लाहो अकबर' दूसरा उत्तर में बोलता था 'जल्जलालुहू'<sup>१</sup>

अकबर का चलाया हुआ यह रिवाज भी उसकी महत्वाकांक्षा को पूर्ण रूप से प्रकट करता है। अस्तु।

कहा जाता है कि, भारत के जुदा जुदा धर्मों और उनके अनुयायियों के झगड़ों को देखकर अकबर का हृदय बहुत दुखी हुआ था। सभी अपनी अपनी सच्चाई प्रकट करने का प्रयत्न करते थे, इसलिए वास्तविक सत्य को जानना असंभव हो गया था। इसलिए अकबर ने यह जानने का प्रयत्न किया था कि, किसी भी प्रकार से संस्कार बिना मनुष्य का मन कुदरती तौर से किस तरफ़ झुकता है इसके लिए उसने बीस बालकों को जन्मते ही ऐसे स्थान में रखा कि, जहाँ मानवी व्यवहार की हवा भी उन्हें नहीं लगती थी। अकबर ने सोचा था कि जब वे बड़े होंगे तब मालूम हो जायगा कि प्राकृतिक रूप से ये किस धर्म की तरफ़ झुकते हैं। मगर इसमें उसे सफलता न मिली! योग्य व्यवस्था के अभाव से कई बालक तो मर गये और कई ३-४ वर्ष के बाद से गँगे ही रहे।<sup>२</sup>

प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध जो कार्य किया जाता है उसका परिणाम कभी अच्छा नहीं होता। यह बात यदि अकबर भली प्रकार से जानता होता और उस पर पूर्ण रूप से श्रद्धा रखता होता तो वह ऐसा कार्य करापि न करता।

अकबर में एक खास गुण था। वह यह कि, - वह अपना काम मीठा बनके निकालने का ही प्रयत्न करता था। वह मानता था कि, अगर

१. आइन-ई-अकबरी के प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवाद का १६६ वाँ पृष्ठ देखो।

२. देखो - दी हिस्ट्री ऑफ आर्यन रूल इन इंडिया, ले. इ. बी. हेवेल। पृ. ४९४ (The History of Aryan rule in India By E. B. Havell P. 494.)

मीठी दवा से रोग मिटता हो तो कड़वी दवा का उपयोग नहीं करना चाहिए। इसी नीति के द्वारा उसने अनेक राज्यों और अनेक वीरों को अपने आधीन कर लिया था। अकबर की यह प्रबल इच्छा थी कि, जो राज्य उसके बाप के अधिकार से निकल गये थे उनको वह पुनः अपने अधिकार में कर ले। मगर जब वह वस्तुस्थिति का विचार करता तब उसे जान पड़ता कि, भारत वीर पुरुषों की खानि है। सबसे विरोध करके अपना मनोरथ सफल करना असंभव है। इसीलिए उसने भेदनीति का आश्रय लेकर भारत के वीरों में फूट डाली और उनमें से अनेक को अपने पक्ष में मिला लिया। अकबर को देश जीतने में और अन्यान्य कामों में मुख्यतया सहायता देनेवाले, राजा भगवानदास, राजा मानसिंह और राजा टोडरमल आदि कौन थे? भारत ही के वीर। अकबर ने भगवानदास की बहिन, मानसिंह की बुआ, के साथ व्याह कर उन्हें अपने पक्ष में मिलाया था। सलीम (जहाँगीर) इसी हिन्दु स्त्री से उत्पन्न हुा था। कहा जाता है कि, अकबर ने तीन हिन्दु राजकन्याओं के साथ व्याह किये थे। उनमें बीकानेर की राजकन्या भी थी। किसी न किसी तरह से सारे राजा अकबर की नीति के शिकार हुए थे और उसके आधीन बने थे; केवल मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह ही उसकी जाल में न फँसे थे। उन्होंने अकबर की शाम, दाम, दंड और भेद सभी नीतियों को पैरों तले रौंदकर अपनी स्वाधीनता की रक्षा की थी। इसीलिए इतिहास के पृष्ठों में उनका नाम 'हिन्दु सूर्य' के मानद अक्षरों से अंकित है—अमर है।

हिन्दु वीरों में फूट डालते ही उनकी सहायता से भिन्न भिन्न देशों पर आक्रमण करने लगा और क्रमशः उन्हें अपने आज्ञाधारक बनाने लगा। अकबर स्वयं युद्ध में जाता था और एक ज़बर्दस्त योद्धा की तरह युद्ध करता था। उसने अपनी वीरता, दृढ़ता और होशियारी से आशातीत सफलता प्राप्त की थी।

सैनिक उत्तम व्यवस्था के कारण भी, अकबर का देशों को जीतने का काम बहुत सरल हो गया था। वह राजपूत राजाओं को सेना में बड़े बड़े ओहदे देकर बहुत प्रसन्न रखता था। वह पाँच हजार से अधिक फौज रखनेवालों को 'अमीर' का और पाँच हजार से कम फौज जिसके अधिकार में होती थी उसको 'मनसबदार' का पद देता था। इनके अलावा नीचे दर्जे के भी अनेक अधिकारी थे।

फौज की योग्य व्यवस्था करके उसके द्वारा भिन्न भिन्न देशों को विजय करने में उसने अविश्वान्त परिश्रम किया था। कहा जाता है कि, उसने बारह बरस तक लगातार युद्ध किये थे।

यह बात तो तीसरे अध्याय ही में बताई जा चुकी है कि, अकबर ने जिस समय राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली थी उस समय कौन सा देश किसके अधिकार में था। उससे यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि, भारतवर्ष का बहुत बड़ा भाग स्वाधीन था; अकबर के अधिकार में नहीं था। इसीलिए समस्त भारत को अपने अधिकार में करने के लिए उसे सतत युद्ध करना पड़ा था।

अकबर ने जितनी लड़ाईयाँ कीं उनमें से, पंजाब, सिंध, कंधार, काश्मीर, दक्षिण, मालवा, जौनपुर, मेवाड़, गुजरात आदि की लड़ाईयाँ खास उल्लेखनीय हैं। क्योंकि ये भयंकर थीं। उनको इन लड़ाईयों में बड़ी बड़ी विपत्तियों का सामना करना पड़ा था। मगर सब में विजयी होकर, सब स्थानों में उसने अपने सूबेदार नियत कर दिये थे। इन लड़ाईयों में कई बार तो फौज में यहाँ तक अफवा उड़ गई थी कि, अकबर मारा गया है। क्योंकि वह ऐसे ही संकट में जा पड़ा था; परन्तु जब वह वापिस मिला तब लोगों को सन्तोष हुआ। किसी देश को फतह करने के लिए पहले वह अबुलफजल, मानसिंह, टोडरमल आदि सेनापतियों को भेजता था और अगर इनसे कार्य सफल न होता था तो फिर स्वयं युद्ध में जाता

था । प्रायः युद्धों में हुआ करता है वैसे, प्रत्येक देश उसने पहले ही हमले में नहीं जीत लिया था । किसी किसी देश को जीतने में तो उसे तीन तीन चार चार आक्रमण करने पड़े थे; बड़ी बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ी थीं; बहुत काल लगाथा और हजारों ही नहीं बल्के लाखों लोगों का बलिदान देना पड़ा था ।

कोई देश जब पूर्ण रूप से अकबर के अधिकार में आ जाता था तब उसके साथ वह ऐसा स्नेह कर लेता था कि, उस देश की इच्छा फिरसे अकबर का विरोध करने की नहीं होती थी । काश्मीर के बड़े बड़े लोगों की कन्याओं के साथ अकबर ने और कुमार सलीम ने पाणिग्रहण किया था । यह उपर्युक्त कथन को प्रमाणित कर देने का ज्वलंत उदाहरण है ।

अकबर ने युद्ध किये थे उनमें कई ऐसी घटनाएँ भी हुई थीं जिनके लिए अकबर की प्रशंसा किये बिना कोई भी लेखक नहीं रह सकता है ।

हम एक दो घटनाओं का यहाँ उल्लेख करेंगे ।

राजा मानसिंह जब पंजाब का शासनकर्ता था तब अकबर के भाई मिर्जामुहम्मदहकीम ने काबुल से आकर पंजाब पर आक्रमण किया था । भाई होते हुए भी उसने अकबर से सत्ता छीन लेना चाहा था । जब अकबर स्वयं युद्ध करने को आया तब वह भाग गया । उसके बाद राजा मानसिंह ने काबुल पर चढ़ाई की । हकीम पराजित हुआ । काबुल पर अकबर का अधिकार हुआ । हकीम की दशा ऐसी खराब हो गई कि उसने आत्महत्या कर लेनी चाही । अकबर जब यह बात मालूम हुई तब उसने सोचा कि, - भाई दीनहीन होकर आत्महत्या करे और मैं ऐश्वर्य का उपभोग करूँ; यह सर्वथा अनुचित है । उसने अपने भाई के पास एक मनुष्य भेजा और उसे वापिस काबुल का शासनकर्ता बना दिया । अकबर ! धन्य है तेरी उदारता ! और धन्य है तेरा सौहार्द ! जो भाई तेरे साथ बार बार दुष्टता का वर्ताव करता था उसी पर तेरी इतनी अनुकम्पा !

अकबर ने मेडता का किला लेने के लिए मिर्जाशरफुद्दीनहुसेन<sup>१</sup> को भेजा था । (ई.स. १५६२) वहाँ का राजा मालदेव उसके साथ बड़ी वीरता के साथ लड़ा था, मगर पीछे से अन्न-जल समाप्त हो जाने के कारण उसे शरफुद्दीन के शरण में जाना पड़ा था । जिस मालदेव<sup>२</sup> ने अकबर के साथ युद्ध किया था उसी मालदेव को अपने दाहिनी तरफ बिठाने का मान दिया था । मालदेव ने भी अपनी पुत्री जोघाबाई<sup>३</sup> को अकबर के साथ ब्याह दिया था ।

ई. स. १५६० के चातुर्मास में अकबर ने मालवा जीतने के लिए अधमखाँ<sup>४</sup> के सेनापतित्व में सेना भेजी थी । इसने मालवा के राजा

१. यह उमराव कुटुंब के ख्वाजा मुईन का पुत्र था । यह वह ख्वाजा मुईन है जो खाविंद महमूद का पुत्र था । खाविंद महमूद ख्वाजा कलान का दूसरा लड़का था । ख्वाजा कलान प्रसिद्ध महात्मा ख्वाजा नासोइद्दीन उबैदुल्लाह अहरार का बड़ा लड़का था । इसीलिए मिर्जा शरफुद्दीन हुसेन खास तरह से अहरारी कहलाता था । विशेष के लिए आइन-ई-अकबरी प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद, ब्लाक मैन कृत, पृष्ठ ३२३.

२. राजा मालदेव एक प्रभावशाली पुरुष था । बहरामखाँ<sup>५</sup> का वह कट्टर शत्रु था । बहरामखाँ जब मक्का गया था तब वह गुजरात के रस्ते न जाकर बीकानेर अपने मित्र कल्याणमल के पास गया था । कारण - बीकानेर का मार्ग उस समय कल्याणमल के क़बजे में था । (देखो-आइन-ई-अकबरी प्रथम भाग, ब्लॉकमैनकृत अंग्रेजी अनुवाद पृ. ३१६) मालदेव का लड़का उदयसिंह मोटा राजा के नाम से प्रसिद्ध है । मालदेव के पास ८००० घुड़सवार थे । यद्यपि राणासांगा-जो फिरदौसमकानी (बाबर) के साथ लड़ा था - बड़ा ही शक्तिशाली था, तथापि सैन्य संख्या में और क्षेत्रविस्तार में मालदेव उससे बढ़कर था । इसीलिए वह विजयी होता था । विशेष के लिए, देखो, आईन-ई-अकबरी प्रथम भाग, ब्लॉकमैन, अंग्रेजी अनुवाद पृ. ४२९-४३० ।

३. अधमखाँ माहम अंगा का लड़का था । युरोपियन इतिहासवेत्ताओं ने उसका नाम आदमखाँ लिखा है । उसकी माता माहम, अकबर की अंगा (आया) थी । अकबर पलने से लेकर गदीनशीन हुआ तब तक अधमखाँ की माता ही अकबर

बाजबहादुर को ई. १५६१ में परास्त किया था। इस लड़ाई में अधमखाँ ने और पीरमहम्मद<sup>१</sup> ने बड़ी ही निर्दयता के साथ स्त्रियों और बालकों को कत्ल किया था। इसके लिए अकबर उनसे बहुत नाराज हुआ था। युद्ध में भी अनीति का व्यवहार करना अकबर राज्यधर्म विरुद्ध समझता था। अधमखाँ के अत्याचार से सप्राट् स्वयं मालवे में गया था; परन्तु उसकी माता माहम अंगा के प्रार्थना करने पर उसको छोड़ दिया। आगे में जाकर अधमखाँ ने फिर गढ़बड़ प्रारंभ की। इसका परिणाम उसकी मौत हुआ। अधमखाँ के बाद अब्दुलखाँ<sup>२</sup> उजबक<sup>३</sup> मालवे भेजा गया, और जिस

की सँभाल लेती थी। माहम की अन्तःपुर में अच्छी चलती थी। इतना ही क्यों, अकबर भी उसको मानता था। बहरामखाँ के बाद मुनीमखाँ वकील नियत हुआ था। इसकी यह सलाहकार थी। बहरामखाँ को पदच्युत कराने में उसका बहुत हाथ था। अधमखाँ पंचहजारी था। वह मानकोट के घेरे में वीरता दिखाकर प्रसिद्ध हुआ था। उसकी सहसा पदवृद्धि हुई थी इससे वह स्वेच्छाचारी हो गया था। विशेष के लिए देखो, -आईन-इ-अकबरी प्रथम भाग का ब्लॉकमैनकृत अंग्रेजी अनुवाद पृ. ३२३-३२४।

१. पीरमहम्मद, शिखान का मुल्ला था। कंधार में यह बहरामखाँ का कृपापात्र था और उसीकी सिफारिश से, अकबर जब गढ़ी पर बैठा तब, वह अकबर के दर्बार में अमीर की पदवी प्राप्त कर सका था। उसने हेमू के साथ जो युद्ध हुआ था उसमें वीरता दिखाई थी। इसीलिए उसको 'नारीरुल्मुक्फ' की पदवी मिली थी। इससे यह इतना मगरूर हो गया था कि इसने चगताई अमीरों की और अन्त में बहरामखाँ तक की अवगणना की थी। इसका परिणाम यह हुआ कि बहरामखाँ ने इसको अपने पद का इस्तिफा देने की आज्ञा दी। शेख़ गदाई के उत्तेजित करने पर उसे बनाया के किले की तरफ़ भेजा और पश्चात् विवश करके उसे यात्रार्थ भेज दिया। विशेष के लिए; देखो आईन-इ-अकबरी प्रथम भाग का ब्लॉकमैनकृत अंग्रेजी अनुवाद। पृ. ३२५।

२. अब्दुल्लाखाँउज्ज्बक हुमायूँ के दर्बार का एक अमीर था। हेमू की हार के बाद इसे 'शुजाअतखाँ<sup>४</sup>' का पद दिया गया था। नौकरी के बदले में कालपी इसे बतौर जागीर के मिला था। गुजरात में इसने अधमखाँ के आधीन रहकर कार्य किया

सप्राट का शेषजीवन

बाजबहादुर<sup>५</sup> ने सप्राट् के विरुद्ध युद्ध किया था उसीको सप्राट् ने अपने कृपापात्र बनाया और अन्त में उसे दो हजार सेना का अधिनायक नियत किया।

कालिंजर अलाहाबाद से ९० माइल और रीवां से ६० माइल है। वहाँ का किला जीतने के लिए अकबर ने भजनूनखाँ<sup>६</sup> काक्षाल को भेजा था। पीरमहम्मद की मृत्यु के बाद जब बाजबहादुर ने मालवा लिया था तब यह (अब्दुल्लाखाँ) पांच हजारी बनाया गया था, और लगभग असीम सत्ता के साथ मालवे भेजा गया था। इसने अपना प्रान्त वापिस जीत लिया। और माँडवे में राजा की भाँति राज्य करने लगा। विशेष के लिए देखो, - आईन-इ-अकबरी प्रथम भाग, ब्लॉकमैन कृत अंग्रेजी अनुवाद। पृ. ३२१।

१. अब्दुल्लजल के कथनानुसार बाजबहादुर का असली नाम वाजिदखाँ था। बाजबहादुर के पिता का नाम शुजाअतखाँ शूर था। इतिहास उसे शजावलखाँ या सजावलखाँ के नामसे पहचानते हैं। इसी के नाम से मालवे के एक बहुत बड़े गाँव को लोग 'शजावलपुर' कहते थे; जिसका असली नाम 'सुजातपुर' था। यह सारंगपुर सरकार (मालवे) के अधिकार में था। वर्तमान में वह विद्यमान नहीं है।

बाजबहादुर हिजरी सन् १६३ (ई. सं. १५५५) में मालवा का राज हुआ था। उसने 'गढ़' पर आक्रमण किया था; परन्तु राणी दुर्गावती ने उसको हराया। इसके बाद वह ऐयाशी में ढूब गया था। वह अद्वितीय गानेवाला था। इसलिए उसने अच्छी अच्छी गानेवालियों को जमा किया था। उनमें रूपमती भी एक थी। लोग अब तक उसको याद करते हैं।

वह हि. सं. १००१ (ई. सं. १५९३) के लगभग मरा था। कहा जाता है कि, बाजबहादुर और रूपमती दोनों एक ही साथ उज्जैन के एक तालाब के मध्य भाग में गाड़े गये थे। विशेष के लिए देखो - आईन-इ-अकबरी के प्र. भाग का अंग्रेजी अनुवाद पृ. ४२८ तथा आर्चियो लॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया; वो. २ रा, ले. ए. कनिंगहाम. पृ. २८८ से २९२ (Archeological survey of India Vol. II. by A. Cunningham pp. 288-292.)

२. यह हुमायूँ का बड़ा प्रधान था। इसके पास नारनोल (पंजाब की) जागीर थी। जब हुमायूँ ईरान भाग गया था तब हाजीखाँ ने नारनोल को घेर लिया था।

था। यह किला भट्ठा अथवा रीवां के राजा रामचंद्रदेव के कबजे में था। रामचंद्र<sup>१</sup> जब उसके शरण आ गया तब अकबर ने अलाहाबाद के नजदीक एक जागीर दी थी।

अभिप्राय यह है कि, जो राजा अकबर के साथ युद्ध करते थे; हजारों मनुष्यों को कतल करते करवाते थे और लाखों रुपये पानी की तरह खर्चते थे, वे ही राजा जब उसके आधीन-संधी करके या हार के-हो जाते थे तब वह उनके साथ लेश मात्र भी शत्रुता नहीं रखता, प्रत्युत प्रायः वह उनका सम्मान ही करता था।

अकबर जैसे शत्रुओं का सम्मान करता था वैसे ही वह अनीतिपूर्वक युद्ध करने से भी धृणा करता था। उसका हम एक उदाहरण देंगे।

मगर राजा बिहारीमल की प्रार्थना से मजनूनखाँ को हाजीखाँ ने कोई कष्ट नहीं पहुँचाया था। उसे सहीसलामत नारनोल से निकल जाने दिया था।

जब अकबर गद्दी पर बैठा तब मजनूनखाँ माणिकपुर-जो साम्राज्य की पूर्व सीमापार था - का जागीरदार बाया गया। वहाँ उसने वीरतापूर्वक अकबर की हुकूमत कायम रखने का प्रयत्न किया था। खानजमान की मृत्यु तक यह वहीं रहा था। हि.स. १७७ (ई. स. १५६१) में उसने कालिंजर को धेरा था। कालिंजर का किला उस वक्त राजा रामचंद्र के अधिकार में था। उसने यह किला बिजलीखाँ से जो पहाड़खाँ का गोद का लड़का था - बहुत बड़ी रकम देकर मोल लिया था। अन्त में राजा रामचंद्र कालिंजर मजनूनखाँ को सौंपकर इसकी शरण में आ गया था। अकबर ने मजनूनखाँ को उस किले का सेनापति बनाया था।

तबकात के कथनानुसार यह पंचहजारी था। इस के अलावा उसे जब जरूरत होती तभी पाँच हजार सेना और मिल सकती थी। अन्त में यह घोरघाट (बंगाल) का युद्ध जीतने के बाद मर गया था। विशेष के लिए देखो - आईन-ई-अकबरी प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद। पृष्ठ ३६९-३७०.

१. राजा रामचंद्र वाधेला वंश का था। वह भट्ठा (रीवां) का राजा था। बाबर ने भारतवर्ष के ३ बड़े राजा गिनाये हैं। उनमें भट्ठा के राजा को तीसरे नंबर बताया है। सुप्रसिद्ध गवैया तानसेन पहले इसी राजा रामचंद्र के आश्रय में रहता था। इसके

जब अकबर दोसौ मनुष्य लेकर 'मही' नदी के पास आया तब उसे मालूम हुआ इब्राहीम<sup>२</sup> हुसेन मिर्जा बहुत बड़ी सेना लेकर ठासरा से पाँच माइल दूर 'सरनाल' तक आ पहुँचा है। अकबर के एक सेनापति ने सलाह दी कि, जब तक हमारी दूसरी सेना न आ जाय तब तक हमें आगे नहीं बढ़ना चाहिए और रात को छापा मारना चाहिए। अकबर ने इस बात को बिलकुल नापसंद किया और कहा, - "रात को छापा मारना अनीति का युद्ध है।" अकबर, मानसिंह, भगवानदास और अन्यान्य मुसलमान सरदारों के साथ नदी पार कर सरनाल आया और इब्राहीम हुसेन मिर्जा को, युद्ध कर ई. स. १५७२ के दिसंबर की २८ वीं तारीख के दिन, उसने पराजित किया।

यह बात तो निर्विवाद है कि, अकबर ने अविश्रान्त युद्ध करके, बहादुरी दिखाके और होशियारी से कार्य करके अपनी आंतरिक इच्छा पूर्ण की थी। उस की सबसे पहली और प्रबल इच्छा थी समस्त भारत में अपना एकछत्र राज्य स्थापित करना। अनेक अंशों में उसने अपनी यह इच्छा पूरी की थी। दूसरे शब्दों में कहें तो इ.स. १५९४ तक में तो वह उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया था।

अकबर ने इच्छित फल प्राप्त किया, एकछत्र साम्राज्य स्थापित किया और सर्वत्र शान्ति फैला दी। यद्यपि ये बातें सही हैं तथापि वीरप्रसू-

पास ही से अकबर ने उसे अपने दरबार में बुलाया था। जब तानसेन ने सबसे पहले अकबर को अपनी विद्या का पचिय दिया था तब अकबर ने उसको २ लाख रुपये इनाम में दिये थे। देखो - आईन-ई-अकबरी प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद। पृ. ४०६.

१. इब्राहीमहुसेनमिर्जा के पिता का नाम महमदसुल्तानमिर्जा था। इसका दुसरा नाम शाह मिर्जा भी था। उसके लड़के का नाम मुज़फ़फ़रहुसेन मिर्जा था। विशेष के लिए देखो - आईन-ई-अकबरी प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवाद का पृ. ४६१-४६२।

भारतमाता की महाराणा प्रताप, जयमल, पता, उदयसिंह और हेमू के समान वीर सन्तानों ने, तथा किसी भी हिन्दु राजा की सहायता लिये बिना

१. हेमू ने अकबर के अधिकारी की कुछ परवाह न कर आगे को अपने कब्जे में कर लिया था। मगर अति लोभ के कारण वह अन्त में कुरुक्षेत्र में मारा गया था। पृष्ठ ४७-४८ में इस बात का उल्लेख हो चुका है। यह ठीक है कि अन्त में वह मारा गया था, मगर साथ ही वह भी ठीक है कि, वह वीरप्रसू भारतमाता का वीर पुत्र था। हेमू की वीरता के संबंध में प्रो. आज़ाद ने अपनी 'दरबारे अकबरी' नाम की डर्डू पुस्तक के पृष्ठ ८४३ में बहुत चित्ताकर्षक बातें लिखी हैं। उनसे मालूम होता है कि, हेमू रेवाड़ी का रहनेवाला दूसर बनिया था। यद्यपि वह सुंदर शरीरवाला नहीं था तथापि वह प्रबंध करने में होशियार, उत्तम युक्तियों से कार्य करनेवाला और युद्ध में विजयलाभ करनेवाला था। वास्तव में अब तक उसके गुण छिपाये और दुर्गुण ही प्रकाशित किये गये हैं। प्रो. आज़ाद कहते हैं कि, इस बनिये को उसका भाग्य गलीकूर्चों में से घसीटकर सलीमशाह की फौज के बाजार में ले गया। बाजार में दुकान लगाकर वह हरेक के साथ मिलजुलकर रहने लगा। लोग उससे महोब्बत करने लगे। परिणाम में वह चौथरी बनाया गया। धीरे धीरे वह कोतवाल और फौजदार के पद पर पहुँचा। अपने ओहदे पर रहकर उसने ईमानदारी से काम किया। सेवा से, मालिक की भलाई में लगे रहने से अथवा लोगों की चुगलियों से - चाहे किसी भी सबब से हो - वह बादशाह का प्रिय हो गया। इससे अभी उमरावों के कार्य उसके हाथ में आने लगे। अन्त में उसके भाग्य ने उसको बादशाह का सबसे बड़ा और प्यारा वज़ीर बना दिया।

चगताई वंश के इतिहास लेखक बनिये की जाति को गरीब समझकर चाहे कुछ लिखें; मगर हेमू का प्रबंध उसके कानून और उसके हुक्म ऐसे दृढ़ थे कि, ढीली दालने गोशत को दबा दिया। (बनिये ने मुसलमानों को नीचा दिखा दिया) फिर महमूदआदिल बादशाह जब पठानों के युद्ध में मारा गया तब वह एक जबर्दस्त राजा बन गया।

उसी अवसर पर दिली और आगे के आसपास भयंकर दुष्काल पड़ा था। बदाउनी ने इसका हृदय-द्रावक वर्णन लिखा है। वह कहता है, - "उस समय देश में ढाई रुपये में १ सेर मकई भी नहीं मिलती थी। भलेभले आदमी तो दर्वाजे बंद करके घर ही में बैठे रहते थे। दूसरे दिन उनके घर देखे जाते तो उनमें से दस बीस

अकेले अपनी फौज के साथ युद्धस्थल में जानेवाली, मालवाधीश बाजबहादुर को परास्त करनेवाली, सप्राट को भी अपनी वीरता से स्तंभित कर देने वाली बंदूक और धनुष चलाने में सुनिपुण और रणस्थल में पीठ दिखाने की अपेक्षा मर मिटाने को ज्यादा पसंद करनेवाली कालिंजर की राजकन्या तथा गोंडवाणा की राजधानी चौरागढ़ (यह इस समय जबलपुर के पास है) की रक्षिका महाराणी दुर्गावती<sup>१</sup> के समान वीर रमणियों ने अकबर को अपनी वीरता का जो परिचय दिया था। उसको वह

मुर्दे निकलते। गाँवों और जंगलों को तो देखता ही कौन था? कफन कौन लावे और दफन कौन करे? गरीब अन्नकष्ट को मिटाने के लिए जंगली वृक्षों के छालपत्तों पर दिन निकालते थे। अमीर गायों और भैंसों को बेचते थे। लोग उन्हें खाने को ले जाते थे। जो लोग ऐसे जानवरों को मारकर खाते थे उनके हाथ-पैर सूज जाते और थोड़े ही दिनों में वे मौत के शिकार बन जाते थे। कई बार तो मनुष्य मनुष्य को खा जाते थे। उनकी शकलें ऐसी बिगड़ गई थीं कि उन्हें देखकर डर लगता था। एकान्त में यदि कोई अकेला आदमी मिल जाता था तो उसके नाक कान काटकर लोग खा जाते थे।"

यद्यपि देश में ऐसी भयंकर स्थिति थी; परन्तु कार्यदक्ष हेमू की सेना पर उसका कुछ भी प्रभाव न हुआ। इसका कारण उसका पुरुषार्थ था। उसके यहाँ जो हाथी घोड़े थे वे भी हमेशा घी शक्कर खाते थे। सिपाहियों का तो कहना ही क्या है?

अन्त में प्रो. आज़ाद कहते हैं, - "हेमू बनिया था : परन्तु उसके पराक्रम गूँज रहे हैं। वह बड़ा ही साहसी और धीर था; अपने मालिक का योग्य नौकर था। वह बहुत प्रेमी था। लोगों के दिल हमेशा खुश रखता था। अकबर उस समय बालक था। अगर वह योग्य आयु में होता तो ऐसे आदमी को कभी अपने हाथ से न खोता। वह उसे अपने पास रखता और सन्तुष्ट करके उससे काम लेता। परिणाम यह होता कि, देश उन्नत बनता और राज्य की नींव मजबूत होती।"

१. रानी दुर्गावती, यह मध्य भारतवर्ष की वीर रमणी थी। यह गोंडवाणा में जो भट्टा के दक्षिण में है - राज्य करती थी। विशेष के लिए देखो 'आइन-ई-अकबरी' के प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद। पृ. ३६७।

यावज्जीवन भूला न था । और क्यों, मानसिंह, टोडरमल, भगवानदास और बीरबल के समान महान योद्धाओं के नामों को भी हम नहीं भूल सकते । इन्होंने अकबर की सर्वत्र हुकूमत कायम करने में असाधारण सहायता की थी । ये कौन से मुगल सन्तान थे ? ये भी तो वीरप्रसू भारतमाता ही की सन्तान थे ? उनकी वीरता के लिए भी भारतमाता ही गौरवान्वित हो सकती है । भारत के इन वीरों की वीरता देखकर अकबर को यह विश्वास हो गया था कि, यदि भारत के वीर क्षत्रियों में फूट न होती तो मैं भारत में कदापि साम्राज्य की स्थापना नहीं कर सकता था । हायरे फूट ! भारत को सर्वथा नष्ट कर डालने पर भी तू अब तक इस पवित्र देश से अपना काला मुँह क्यों नहीं करती ? कहाँ आर्यत्व की रक्षा के लिए भूख और प्यास को सहने और जंगलों में भटकने वाले हिन्दु सूर्य महाराणा प्रताप ! और कहाँ पदवियों के (Titles) लिए मर मिटनेवाले-अपनी आर्य प्रजा को बरबाद करनेवाले आज के कुछ खुशामदी नामधारी हिन्दु राजा ! ओ भारतमाता ! ऐसे धर्मरक्षक और देशरक्षक वीरपुत्रों को उत्पन्न करने का गौरव अब फिर से तू कब प्राप्त करेगी ?

इतिहास के इस बात को दृढ़ करते हैं कि, दूसरे मुसलमान बादशाहों की अपेक्षा अकबर प्रजा का विशेष प्यारा था । इतना ही नहीं अब तक भी इतिहास लेखकों के लिए अकबर इतिहास का एक विषय हो गया है । ऐसा क्यों हुआ ? इस के अनेक कारण बताये जा सकते हैं ।

पहला कारण तो यह था कि, हिन्दु मुसलमान, पारसी, यहुदी, जैन, ईसाई आदि प्रत्येक पर उसकी समान दृष्टि थी । इतना ही नहीं उसने हरेक धर्मवाले को जुदा जुदा प्रकार के ऐसे फर्मान दिये हैं कि, जो यावच्चंद्र दिवाकरौ अकबर का स्मरण कराते रहेंगे ।

दूसरा कारण यह है कि, उसने प्रत्येक को प्रसन्न रखने के लिए अनेक सुधार भी किये थे । वैश्या और शराब के लिए उसने बड़ी कठोरता

की थी । धनी या निर्धन कोई भी आवश्यकता से अधिक नाज नहीं रख सकता था । बाजार भाव बढ़ाकर व्यापारी गरीबों को कष्ट न दें, इस बात का ख्याल रखने की उसने अपने कोतवाल को सख्त ताकीद कर दी थी । उसने सती होने की प्रथा को और बालविवाह को रोका था । बालविवाह को रोकने के लिए उसने यह आज्ञा दी थी कि लड़के का १६ बरस के और लड़की का १४ बरस के पहले व्याह न किया जाय । उसने जैसे पुनर्विवाह का निषेध किया था, वैसे ही वृद्ध स्त्रियाँ युवकों के साथ व्याह न करें इसका भी प्रबंध किया था । कहा जाता है कि मुसलमानों में उस समय यह रिवाज विशेष रूप से प्रचलित था । सम्राट् का ख्याल था कि, जो मनुष्य एक से विशेष स्त्रियों के साथ व्याह करता है वह स्वतः अपना नाश करता है । जो हिन्दु बलिदान के नाम जीवों की हिंसा करते थे उन्हें भी, उस कार्य को अन्याय का कार्य बताकर, रोक दिया था । रेवेन्यु विभाग का सारा भार किसानों पर है यह समझकर उसने कृषकों के कई कष्टदायक 'कर' बंद कर दिये थे । इतना ही नहीं, हिन्दुराजाओं ने जो 'कर' लगाये थे उन्हें भी उसने उठा दिया । उनसे जो 'कर' लिया जाता था वह भी मर्यादित था । वह 'कर' भी यदि किसीको भारी जान पड़ता तो अकबर उसमें भी कमी कर देता था । यदि कोई अपनी पैदावार का अमुक भाग देना चाहता था तो सम्राट् 'कर' के स्थान पर उसको ही स्वीकार कर लेता था । जिस वर्ष फसलें बिगड़ जाती, उस वर्ष का 'कर' किसानों से बिलकुल ही नहीं लिया जाता था । 'कर' की व्यवस्था का कार्य उसने टोडरमल को सौंपा था, कारण, वह पहले से ही जर्मांदार था, इसलिए इस विषय का उसे विशेष ज्ञान था ।

प्रजा के लाभार्थ ऐसी ऐसी व्यवस्थाएँ करनेवाला राजा प्रजाप्रिय क्यों न होता ? समस्त धर्मों के लोगों को समान दृष्टि से देखने और प्रजा की भलाई ही में अपनी भलाई समझनेवाला राजा - चाहे वह हिन्दु हो या मुसलमान, पारसी हो या यहूदी, जैन हो या बौद्ध, चाहे कोई भी हो -

यदि संसार में प्रशंसापात्र है; प्रजा उसको प्यार करती है तो इसमें आश्र्वय की कोई बात नहीं है।

संक्षेप में यह है कि अकबर की राज्यव्यवस्था में न्याय और दया का मिश्रण था। न्याय विभाग में उसने जो सुधार किये थे वे उस जमाने के लिए बहुत ही सुधरे हुए कहे जा सकते हैं। उसके कानूनों में दया और प्रजा-प्रेम झलकते थे। अकबर अपने ही लिए नहीं बल्कि अन्यान्य सूबेदारों और ओहदेदारों के लिए भी जो कानून बनाये थे उनमें उक्त दो बातें खास तरह से लक्ष में रखी गई थीं। हम उसके सूबेदारों ही के कानूनों को देखेंगे। उसके प्रत्येक सूबेदार को निम्नलिखित बातों पर खास तरह से ध्यान देना पड़ता था।

- १ - सदा लोगों के सुख का ध्यान रखना।
- २ - गंभीरतापूर्वक ऊहापोह किये बिना किसी की जिंदगी नहीं लेना; अर्थात् मृत्यु की सजा नहीं देना।
- ३ - न्याय के लिए जो अर्जी दे उसमें देर करके, न्याय के इच्छुक को दुःखी नहीं करना।
- ४ - पश्चात्ताप करनेवालों को क्षमा करना।
- ५ - रस्ते/अच्छे बनाना।
- ६ - उद्योगों किसानों से मित्रता करना अपना कर्तव्य समझना।

अब अकबर की कुछ अन्यान्य व्यवस्थाओं का दिग्दर्शन कराया जायगा।

अकबर के समय के सिक्कों के लिए कहा जाता है कि, उसने पहले के राजाओं की छापवाले सिक्कों को गलाकर अपनी नवीन छाप के सिक्के चलाये थे। अकबर के एक रूपये के सिक्के के ४० 'दाम' होते थे। एक 'दाम' वर्तमान के एक पैसे से कुछ विशेष होता था। 'दाम' ताँबे का सिक्का था और रुपया चाँदी का सिक्का था। अकबर का 'लालीजलाली'

नामक सोने का सिक्का भी चलता था। इनके अलावा एक चौकौना सोने का सिक्का चलता था। उसके मूल्य में प्रायः परिवर्तन हुआ करता था।

ईस्वी सन् १५७५-७६ से अकबर ने अपने सिक्कों में 'अल्लाहो अकबर' लिखवाया था।

मि. डब्ल्यू. एच. मोरलेंड. का कथन है कि, "इस समय रूपये का वजन १८० ग्रेन है। अकबर का सिक्का इससे बजन में कुछ कम था; मगर वह खरी चाँदी का बना हुआ था।"

अकबर की मुहरें (Seals) के लिए कहा जाता है कि, वे भिन्न भिन्न प्रकार की थीं। एक में तो केवल उसी का नाम था। दूसरी में उसके तैमूर तक पूर्वजों के नाम थे।

१. अकबर के समय के सिक्कों की बातें जानने के लिए परिशिष्ट (ज) देखो।
२. मुहरें लगाने का रिवाज जैसे अब है वैसे ही पहले भी था। वे मुहरें भिन्न भिन्न प्रकार की रहती थीं। अबुलफजल के कथनानुसार सम्राट् अकबर की मुहरें अनेक तरह की थीं। उनमें एक ऐसी थी जिसको मौलाना मक्हसद ने अकबर की हुकूमत के प्रारंभ ही में खोदकर बनाया था। यह लोहे की बनी हुई और गोल थी। 'रीका' (पौन गोल भाग में सीधी लाइनें लिखने को 'रीका' कहते हैं) पद्धति में शाहनशाह का और तैमूर से लैकर अन्यान्य प्रसिद्ध पूर्वजों के नाम खुदे हुए थे। दूसरी एक मुहर ऐसी ही गोल थी। मगर उसमें 'नास्तालिक' (जिसमें सभी लाइनें गोल लिखी जाती हैं) पद्धति का नाम था। इसमें केवल सम्राट् ही का नाम था।

तीसरी एक मुहर थी वह न्याय विभाग के उपयोग में आती थी। वह 'मेहराबी' (जिसका आकार छः कोने का लंबा तथा गोल होता है) के समान थी। उसके ऊपर बीच में सम्राट् का नाम था और चारों तरफ निम्नलिखित आशय का लेख लिखा था,-

"ईश्वर को प्रसन्न करने का साधन प्रामाणिकता है। जो सीधे रस्ते चलता है उसे भटकते मैंने कभी नहीं देखा।"

चौथी एक महुर थी उसको नमकीन ने बनाया था। (यह नमकीन काबुल का था) पीछे से इस प्रकार की छोटी-बड़ी मुहरों को दिल्ली के मौलाना अलीअहमद

इस बात को हम भली प्रकार जानते हैं कि, अकबर के समय में, रेलगाड़ियाँ या हवाई विमान नहीं थे। एक जगह से दूसरी जगह समाचार पहुँचाने का साधन सिर्फ़ कासीद थे। तो भी सरलता से डाक पहुँचाने के लिए प्रति छः माइल एक आदमी रखा गया था। उसके द्वारा हर जगह डाक पहुँचाई जाती थी। बहुत दूर के आवश्यक समाचार पहुँचाने के लिए साँढ़नी सवार थे। वे समाचार पाते ही नियत स्थान पर पहुँचाने के लिए तत्काल ही रवाना हो जाते थे।

ने सुधारा था। इनमें से जो छोटी और गोल मुहर थी वह 'उजुक' (चगताई) के नाम से पहचानी जाती थी। वह 'फर्मान-ई-सबतीस' के लिए काम में आती थी। यह 'फर्मान-ई-सबतीस' तीन बारों के लिए निकाला गया था। (१) मनसबका निर्वाचन करने के लिए (२) जागीर के लिए (३) सर्यूधाल के लिए। दूसरी एक बड़ी थी। इसमें शाहन्शाह के पूर्वजों के नाम थे। यह पहले तो विदेशी राजाओं को पत्र लिखते थे, उन पर लगाने के काम में आती थी; पीछे से उपर्युक्त 'फर्मान-ई-सबतीस' में भी लगाई जाने लगी।

इसके सिवा दूसरे फर्मानों के लिए एक चौकोर थी। उसके ऊपर 'अल्लाहो अकबर ज़ल्ले जलालहू' लिखा था।

ऊपर जो 'उजूक' नाम की मुहर बताई गई है वह अकबर की अँगुली में पहनने की अंगूठी थी। अकबर का पिता हुमायूँ भी ऐसी अंगूठी रखता था, और उसका मुहर की तरह उपयोग करता था। यह बात इस पुस्तक के २५३ वें पृष्ठ में दिये हुए फुटनोट के वृत्तान्त से भी प्रमाणित होती है।

कहा जाता है कि, ई.स. १५९८ में (अकबर के राज्य के ४२ वें वर्ष में) अकबर ने ईसाई उपदेशकों (Jesuit missionaries) को जो फर्मान दिया था उसकी मुहर को देखने से पता चलता है कि अकबर की मुहर में सब आठ गोलाकार थे। उसके बाद जहाँगीर ने अपने नाम का एक गोलाकार और बढ़ाकर नौ कर दिये थे। उसके पीछे से आनेवाले बादशाहों ने भी अपने अपने नाम का एक एक गोलाकार बढ़ा दिया था।

उपर्युक्त प्रकार से अकबर की मुहर में आठ गोलाकार थे इसका कारण यह जान पड़ता है कि, वह तैमूरलंग से आठवीं पीढ़ी में था।

अकबर ने प्रजा के सुख के लिए जो अनुकूलताएँ कर दी थीं उनसे एक और जैसे प्रजा निश्चिंत थी वैसे ही दूसरी और दैनिक उपयोग में आनेवाली वस्तुएँ इतनी सस्ती थीं कि, गरीब से गरीब मनुष्य के लिए भी अपना गुजारा चलाना कठिन नहीं था। बेशक अभी की तरह चलनी सिक्कों की बाहुल्यता-कागज़ के नोटों, चेकों और नकली धातु के सिक्कों की बाहुल्यता न थी। मगर जब आवश्यक पदार्थ सस्ते होते हैं तब विशेष सिक्कों की आवश्यकता ही क्या रह जाती है? मनुष्य जाति को अपने पेट की चिन्ता सबसे पहले और ज्यादा होती है; और पेट का खड़ा चलनी सिक्कों से - नोटों से - या रुपयों से नहीं भरता। इसको भरने के लिए अनाज, धी, दूध, दही आदि पदार्थों की आवश्यकता है। ऐसे पदार्थ उस

कई लेखकों का अनुमान है कि, भारत में, मुगलों की हुक्मत में भी राजाओं, प्रधानों, बड़े बड़े अधिकारियों तथा फौजी अधिकारीयों की भी उनके रुतबे के माफिक, भिन्न भिन्न मुहरें थीं। उनमें उनके नामों के अलावा सम्राट् की दी हुई पदवियाँ भी उनमें खुदी रहती थीं। रुतबे के अनुसार मुहर को काम में लाने के लिए मिले हुए हक का संवत् और हिजरी सन् भी उनमें लिखा रहता था।

मुगल बादशाहों की मुहरों में साधारणतया जो कुछ लिखा रहता था वह नीचे से ऊपर पढ़ा जाता था। इससे राज्यकर्ता सम्राट का नाम सबसे ऊपर रहता था। कहा जाता है कि, मुगलों की उत्तरि के समय में उनकी मुहरें बहुत छोटी अर्थात् १ या १॥ इंच व्यास की रहती थीं। उनमें जो कुछ लिखा रहता था वह बहुत ही सादी और नम्र भाषा में रहता था। पीछे जब मुगलों का पतन प्रारंभ हुआ तब बड़े बनने की तीव्र इच्छा रखनेवाले प्रधानों ने, केवल 'नाम' के शाहन्शाहों के हाथों में से राज्याधिकार अपने हाथ में लिया और उनके नामों की मुहरें बहुत बड़ी बड़ी बनवाई। वे बहुत सुंदर थीं। उनमें के लेख बहुत ऊंची श्रेणि के थे।

मुगलों की मुहरों से संबंध रखनेवाली विशेष बातें जानने के लिए 'जर्नल ऑफ़ दी पंजाब हिस्टोरिकल सोसायटी' के पाँचवें बॉल्यूम के पृ. १०० से १२५ तक में छपा हुआ The Rev. Father Felix (O. C.) का लेख बहुत उपयोगी है। तथा, देखो 'आईन-ई-अकबरी' के प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद। पृ. ५२ व १६६.

समय कितने सस्ते थे, इस विषय में W.H. Moreland नाम विद्वान् का 'दी वेल्यु ऑफ मनी एट दी कोर्ट ऑफ अकबर' नामक लेख<sup>१</sup> अच्छा प्रकाश डालता है। उसके लेख से मालूम होता है कि, उस समय सदा उपयोग में आनेवाली वस्तुओं का भाव निम्न प्रकार से था :-

गेहूँ	१ रु. के १८५ रतल।
जव	१ रु. के २७७॥ रतल।
हलके से हलके चावल	१ रु. के १११ रतल।
गेहूँ का आटा	१ रु. के १४८ रतल।
दूध	१ रु. के ८९ रतल।
घी	१ रु. के २१ रतल।
सफेद शकर	१ रु. के १७ रतल।
काली शकर	१ रु. के ३९ रतल।
नमक	१ रु. के १३७ रतल।
जवार	१ रु. के २२२ रतल।
बाजरी	१ रु. के २७७॥ रतल।

उपर्युक्त दरर से यह बात सहज ही समझ में आ सकती है कि, जीवनोपयोगी पदार्थ उस समय कितने सस्ते थे। कहाँ आज रुपये के ५ रतल गेहूँ और कहाँ उस समय १८५ रतल? कहाँ आज रु. का ३-४ रतल गेहूँ का आटा और कहाँ उस समय १४८ रतल? कहाँ आज रु.

१. देखो; जर्नल ऑफ दी रॉयल एसियाटिक सोसायटी के इ. स. १९१८ के जुलाई और अक्टोबर के अंक। पे. ३७५ से ३८५ तक।

२. विन्सेंट ए. स्मिथ ने अपनी 'अकबर' नाम की पुस्तक के पृ. ३९० में अकबर के समय के जो भाव दिये हैं, वे भी उपर्युक्त भावों के साथ लगभग मिलते जुलते ही हैं। कुछ फर्क घी के भाव में मालूम होता है। अर्थात् मि. मोरलेंड ने घी का भाव ऊपर लिखे अनुसार रु. का २१ रतल बताया है और मि. स्मिथ ने रु. का १३५% रतल लिखा है।

का ५ रतल दूध और कहाँ उस समय ८८ रतल? कहाँ आज रु. का लगभग पौन रतल घी और कहाँ उस समय का २१ रतल। क्या भारतवर्ष के अर्थशास्त्री बता सकते हैं कि, देश पहले की अपेक्षा उन्नत हुआ है या अवनत? जिस देश में बहुत बड़ी संख्या को एक वक्त का अनाज (घी, दूध की तो बात ही नहीं) मिलना भी कठिन हो; पेट में एक बालिशत के खड़े पड़ गये हों; आँखें ऊँटी धूँस गई हों, गाल सूख गये हों, चलते पैर काँपते हों; और सन्तान निर्माल्य पैदा होती हो; उस देश को उन्नत बताने का साहस कौन कर सकता है? संभव है कि देश में सिक्के (जैसा कि, पहले कहा जा चुका हैं) बढ़े हों; मगर उन सिक्कों से मनुष्य जाति की शारीरिक और मानसिक शक्ति के विकास में क्या लाभ हो सकता है?

यदि कोई कहे कि 'अभी जो भाव बढ़ गये हैं इसका कारण लड़ाई<sup>२</sup> है?' तो इसमें कुछ सत्यांश है; मगर जिस समय देश पर लड़ाई का कोई प्रभाव नहीं हुआ था उस समय भी - लड़ाई के पहले भी - वस्तुएँ सस्ती न थीं। उपर्युक्त विद्वान् ने अकबर के भावों के साथ ही सन् १९१४ के भाव लिखे हैं। वे इस प्रकार हैं -

गेहूँ	१ रु. के २५ रतल
जव	१ रु. के २९ रतल
चावल	१ रु. के १५ रतल
गेहूँ का आटा	१ रु. के २१ रतल
दूध	१ रु. के १६ रतल
घी	१ रु. के २ रतल (लगभग)
सफेद शकर	१ रु. के ९ रतल
काली शकर	१ रु. के १० रतल

२. लड़ाई के बाद जो भाव बढ़े हैं वे लड़ाई के वक्त से सवा गुने हैं। इससे स्पष्ट है कि, इसका कारण खास लड़ाई नहीं मगर विदेशों में माल का जाना है।

इससे यह स्पष्ट है कि, युद्ध के पहले भी ये वस्तुएँ बहुत सस्ती न थीं। वृद्ध पुरुषों का कथन है कि प्रति दिन जीवनोपयोगी वस्तुएँ महँगी ही होती जा रही हैं।

ऐसा क्यों हुआ? इस प्रश्न का उत्तर देने की यह जगह नहीं है। इसके लिए बहुत सा समय और स्थान चाहिए। तो भी इतना तो कहना ही होगा कि, वस्तुओं की कीमत का आधार उसके निकास, बहुतायत और अच्छी फसल पर है। देश का माल जैसे जैसे बाहर जाने लगा वैसे ही वैसे सदैव काम में आनेवाले पदार्थ महँगे होने लगे, गरीबों और साधारण लोगों के हाथ से वे बिलकुल निकल गये। धृत, दही और दुग्ध तो बहुत ही ज्यादा महँगे हैं। इसका कारण पशुओं की कमी है। घी, दूध और दही देनेवाले पशु एक ओर विदेश भेजे जाते हैं और दूसकरी और देश ही में व्यापार के नाम कतल किये जाते हैं। दोनों तरह से पशुओं की कमी होने लगी। यही कारण है कि, भारतवासियों के जीवनभूत दुग्ध-दही की कमी हो गई है। अकबर यद्यपि मुसलमान था तथापि उसके समय में पशुओं का इतना संहार नहीं होता था। इतना ही क्यों, उसने गाय, भैंस, बैल और भैंसे का मारना तो अपने राज्य में प्रायः बंद ही कर दिया था। इस बात का पहले उल्लेख हो चुका है। इसीलिए उस समय दुग्ध, दही, घृतादि बहुत सस्ते थे।

दूसरी तरफ़ हमारे देश से गया हुआ बहुत सा कच्चा माल नये नये रूपों में वापिस यहाँ आने लगा। धर्म और देश का अभिमान नहीं रखनेवाले लोग उस पर फिदा होकर उसे ग्रहण करने लगे। हालत यहाँ तक बिगड़ी कि, अपने आर्यत्व के साथ अपने वेष-भूषा को भी लोगोंने छोड़ दिया। जब हम विदेशी वस्तुएँ ग्रहण करने लगे तब स्वदेशी वस्तुएँ बिकने और फल-स्वरूप बननी बंद हो गई। यह बाद तो स्पष्ट है कि, वस्तुओं की कीमत का आधार उनकी पैदाइश ही है। ऊपर की चीजों में से एक चीज के विषय में यहाँ कुछ लिखा जायगा।

अकबर के समय में शक्कर बहुत ज्यादा महँगी थी। इसका सबब यह था कि, सफेद शक्कर को सुधारने की-साफ़ करने की रीति बहुत ही थोड़े लोग जानते थे। इसीलिए सफेद शक्कर कम होती थी।

पहले जो भाव लिखे गये हैं उनसे मालूम होता है कि, अकबर के समय में गरीब से गरीब आदमी को भी अपना गुजारा चलाने में कठिनता नहीं पड़ती थी। हिसाब लगाने से मालूम होता है कि, एक आदमी पाँच छः आने महीने में अच्छी तरह से अपना निर्वाह कर सकता था। मगर आज यह दशा है कि, साधारण से साधारण मनुष्य को भी सिर्फ़ खुराक के लिए १५-२० रु. मासिक खर्चने पड़ते हैं। इसको देश का दुर्भाग्य न कहें तो और क्या कहें?

अब हम अकबर की कुछ आन्तरिक व्यवस्थाओं के ऊपर प्रकाश डालेंगे।

राज्य व्यवस्थाओं में अन्तःपुर (ज्ञानख़ाना) प्रायः क्लेश का कारण हुआ करता है। अकबर इस बात को भली प्रकार जानता था। इसीलिए वह अपने अन्तःपुर की व्यवस्था पर विशेष ध्यान रखता था। उसने अन्तःपुर की स्थियों के दर्जे बनाये थे और उनको न्यूनाधिक मासिक खर्च-जितना जिसके लिए नियत किया गया था-मिला करता था। अबुल्फ़ज़्ज़ल के कथनानुसार पहले दर्जे की स्थियों को १०२८ से १६१० रुपये तक मासिक खर्चा मिलता था। ज्ञानख़ाने के मुख्य नौकरों को २० से ५१ रु. तक और साधारण नौकरों को २ से ४० रु. तक मासिक वेतन मिलता था। (ध्यान में रखना चाहिए कि अकबर के समय का रूपया ५५ सेंट के बराबर था) स्थियों में से किसीको कुछ जरूरत होती तो उसे ख़ज़ानची से अर्ज़ करनी पड़ती थी। अन्तःपुर के अन्दर के हिस्से की चौकी स्थियाँ करती थीं। बाहर के भाग में नज़िर, दर्बान और फ़ौजी सिपाही अपने अपने नियत स्थानों पर पहरा देते थे। अबुल्फ़ज़्ज़ल लिखता है कि, ई. सन्

१५९५ वे में अकबर को अपने परिवार के खानगी खर्च में ७७। (सवा सतहत्तर) लाख से भी अधिक रूपये देने पड़े थे।

कई लेखकों का मत है कि, अकबर के मुख्य दस स्त्रियाँ थीं। उनमें से तीन हिन्दू थीं और शेष थीं मुसलमान।

मि. ई. बी. हेवेल का अथवा है कि, उसके बहुत सी स्त्रियाँ थीं। वह तो यहाँ तक लिखता है, - “मुग़लों की दन्तकथाओं के अनुसार बादशाह यदि किसी भी विवाहित स्त्री पर मुग्ध हो जाता था तो उसके पति को मजबूरन् तलाक देकर, अपनी स्त्री बादशाह के लिए, छोड़ देनी पड़ती थी।” हम नहीं कह सकते कि, इसमें सत्यांश कितना है? चाहे कुछ भी था मगर उस समय की वृष्टि से, यह कहा जा सकता है कि, अकबर के स्त्रियाँ बहुत थोड़ी थीं। कई उदाहरणों से यह बात सिद्ध होती है। कहा जाता है कि राजा मानसिंह के १५०० स्त्रियाँ थीं। उनमें से ६० तो उसके साथ ही सती हुई थीं। अकबर के एक दूसरे मनसबदार के १२०० स्त्रियाँ थीं। इतना ही क्यों, हुमायूँ और जहाँगीर के भी अकबर से विशेष स्त्रियाँ थीं।

आधुनिक लेखकों ने, मालूम होता है कि, अकबर की स्त्रियों के विषय में एक दूसरी बात का विशेष रूप से ऊहापोह किया है। वह यह है कि अकबर की स्त्रियों में कोई ईसाई स्त्री भी थी या नहीं? इस विषय में सबसे सेंट कॉलेज के फादर एच. होस्टेन, स्टेट्समेन द्वारा सन् १९१६ में यह कहने को आगे आये थे कि, - “अकबर के अन्तःपुर में एक ईसाई स्त्री भी थी।” इसके बाद अनेक इतिहासकारों ने इस विषय में ऊहापोह किया है, मगर अब तक यह निश्चय नहीं हुआ कि, अकबर की कौनसी स्त्री ईसाई थी? अस्तु।

दूसरे मुसलमान बादशाहों की अपेक्षा ही नहीं बल्के अनेक हिन्दू राजाओं की अपेक्षा भी अकबर ने विशेष ख्याति पाई थी। इसका कारण

उसके गुण और उसकी कार्यदक्षता ही है। प्रजा का प्यारा बनना कुछ कम चतुराई नहीं है। यह बात तो निर्विवाद है कि, ख्याति और सम्मान प्राप्त करने की इच्छा हरेक को रहती है। मगर कैसे आचरणों से यह इच्छा पूरी होती है इसका भली प्रकार से जब तक ज्ञान नहीं होता तब तक यह इच्छा अपूर्ण ही रहती है। इतना ही नहीं कई बार तो इसका परिणाम उल्टा होता है। वर्तमान समय में भी भारत में अनेक वोइसराय आये मगर लोकप्रिय हेने का सन्मान तो केवल लॉर्ड रीपन और लॉर्ड हार्डिंग को ही मिला। दूसरे भी लोकप्रिय होने की आशा तो साथ में लाये थे मगर उनकी आशा पूर्ण न हुई। इसका कारण उनके लक्ष्यबिंदु की त्रुटि थी। इस समय अकबर की केवल हिन्दू-मुसलमान ही नहीं बल्के युरोपियन विद्वान् भी प्रशंसा करते हैं। इसका कारण उसके गुण ही थे। यद्यपि अकबर एक मनुष्य था और उसमें अनेक दुर्गुण भी थे, जिनका जिकर गत तीसरे प्रकरण में किया जा चुका है; तथापि यह कहना ही पड़ेगा कि, उसके कई असाधारण गुणों ने उसके दुर्गुणों को ढक दिया था। अकबर के गुणों को देखकर कई लेखक तो यहाँ तक कहते हैं कि, - “अकबर ने सिंहासन को देदीप्यमान कर दिया था।” कारण-सिंहासनस्थ राजा का प्रधान धर्म प्रजा को सुखी बनाना; प्रजा का कल्याण करना है। अकबर ने भली प्रकार से इस धर्म को पाला था। इसीलिए कहा जाता है कि, उसने सिंहासन को अलंकृत किया था।

अकबर में सबसे बड़ा गुण तो यह था कि वह बड़े से बड़े शत्रु को भी यथासाध्य नर्मी ही से अपने अनुकूल, - अपने आधीन बना लेता था। वह जैसा साहसी था वैसा ही सशक्त और सहनशील भी था। अपने पर आनेवाले कष्टों को वह बड़ी धीरज के साथ सह लेता था।

अकबर मानता था कि, - “जिन राजकार्यों को प्रजा कर सकते हैं उनमें राजा को दखल नहीं देना चाहिए। कारण, - प्रजा यदि भ्रम

में पड़ेगी तो राजा उसको सुधार लेगा, मगर राजा ही यदि भ्रम में पड़ जायगा तो उसे कौन सुधारेगा ?”

कैसा अच्छा ख्याल है ! प्रजा - स्वातंत्र्य के कितने ऊँचे विचार हैं ! प्रजा को सिर नहीं उठाने देने के लिए कानून के नये नये बोझे तैयार करनेवाले; प्रजा अपने दुःखों से व्याकुल होकर चिल्हा न उठे इसलिए उसके मुँह पर ताले ठोकनेवाले हमारे आधुनिक शासनकर्ता क्या अकबर के विचारों से कुछ सबक सीखेंगे ?

अकबर के समस्त कार्यों का साध्यबिंदु एक था, - भारत को गौरवान्वित करना । इस साध्य-बिंदु को ध्यान में रखकर ही उसने अपने शासनकाल में, लुप्त प्रायः कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि विद्याओं का पुनरुद्धार किया था; उन्हें उन्नत बनाया था ।

वह जैसा दयालु था वैसा ही दानी भी था । अकबर जब दर्बार में बैठता तब एक खजानची बहुत सी मुहरें रूपये लेकर सम्राट के पास खड़ा रहता था । उस समय यदि कोई दरिद्र आ जाता था तो अकबर उसे दान देता था । वह जब बाहिर फिरने निकलता था उस समय भी उसके साथ द्रव्य लिए हुए एक आदमी रहता था । रास्ते में यदि कोई गरीब उसको दिखाई दे जाता था या कोई माँगनेवाला उसके सामने आ जाता था, तो वह उसे कुछ न कुछ दिये बिना नहीं रहता था । लूले, लंगड़ों, अंधों या इसी तरह के लाचार लोगों पर अकबर विशेष दया दिखाता था । अकबर ने न्याय में जैसे हिन्दु, मुसलमान या धनी निर्धन का भेद नहीं रखा था उसी तरह से दान देने में भी उसने जाति, धर्म, मूर्ख, पंडित आदि का भेद नहीं रखा था । अपने राज्य में अनेक स्थलों पर उसने अनाथालय खोले थे । फतेहपुर सीकरी में दो अनाथाश्रम थे । एक हिन्दुओं के लिए और दूसरा मुसलमानों के लिए । हिन्दुवाले आश्रम का नाम धर्मपुर था और मुसलमानोंवाले आश्रम का नाम खैरपुर ।

कहा जाता है कि, अकबर ने कई ऐसी हुनर-उद्योग शालाएँ एवं कारखाने खोले थे जिनमें तोपें, बंदूकें, बारूद, गोले, तरबारें, ढालें आदि युद्ध की सामग्रियाँ तैयार होती थीं । एक कारखाने में इतनी बड़ी तोपें बनती थीं कि उनमें बारह मन वजन का गोला आ जाता था । लोग इतनी बड़ी तोप को देखकर, सुनकर आश्चर्यान्वित होते थे; परन्तु युरोप के महा समर में जिन शस्त्राखों का प्रयोग हुआ है उन्हें देखसुनकर लोगों का वह आश्चर्य जाता रहा है । वैसी तोपें अब साधारण बात समझी जाने लगी हैं ।

अकबर समझता था कि, दुराचार पाप का मूल और अवनति का प्रधान कारण है । जिस देश में ब्रह्मचर्य का सम्मान नहीं होता उस देश की उन्नति नहीं होती; जिस जाति में ब्रह्मचर्य का नियम नहीं होता वह जाति निःसत्त्व हो जाती है; और जिस कुटुंब में ब्रह्मचर्य का निवास नहीं होता वह अपमानित होता है । वह कभी गौरवान्वित नहीं होता । अकबर ने अपनी प्रजा को ऐसे दुराचारवाले व्यसनों से दूर रखने के लिए अनेक उपाय किये थे । उसने वेश्याओं के लिए शहर से बाहर रहने का प्रबंध किया था । जिस स्थान पर वे रहती थीं, उसका नाम उसने ‘शैतानपुर’ रखा था । सम्राट् ने ‘शैतानपुर’ के नाके पर एक चौकी बिठाई थी । चौकी का अहलकार वेश्या के यहाँ जानेवाले या वेश्या को अपने यहाँ बुलानेवाले का नाम, उसके पुरे पते सहित, लिख लेता था ।

यह बात उपर कई बार कही जा चुकी है कि, अकबर जैसा सहलशील था वैसा ही कार्यकुशल भी था । यदि कोई उसे अचानक कभी कोई अप्रिय बात कह देता था तो अकबर एकदम उस पर कुपित नहीं हो जाता था । वह पहली बार की भूल समझकर उसे क्षमा कर देता था । जिस कारण से मनुष्य उत्तेजित होता था उस कारण को यदि उचित होता तो, मिटाने का वह प्रयत्न करता था । लोगों में यह प्रसिद्ध हो गया था, जैसे पहले कहा जा चुका है, कि अकबर मुसलमान धर्म से भ्रष्ट हो गया

था। कहा जाता है कि, तूरान के राजा 'अबदुल्लाख़ा' उज्जेग ने अकबर के धर्मभ्रष्ट होने की अनेक झूठी सच्ची बातें सुनी थीं, इसलिए इसके संबंध में अकबर को उसने एक पत्र लिखा था। अकबर ने उसका उत्तर इस प्रकार दिया था,-

"लोग लिख गये हैं कि ईश्वर के एक लड़का था। पैगम्बर के लिए भी कई कहते हैं कि वह तो जादूगर था। जब ईश्वर और पैगम्बर भी लोगों की निंदा से न बचे तब मैं कैसे बच सकता हूँ?"

चाहे कुछ भी था; परन्तु अपने आपको निर्देष मनाने के लिए उसने कितना सुंदर उत्तर दिया था!

अकबर साहित्य का पूरा शौकीन था। साहित्य में धर्मशास्त्रों और ज्योतिष, वैद्यक आदि समस्त विद्याओं का समावेश हो जाता है। अकबर सबमें रुचि रखता था, इसीलिए अर्थर्ववेद, महाभारत, रामायण, हरिवंशपुराण तथा भास्कराचार्य की लीलावती और इसी तरह के दूसरे खगोल तथा गणित ग्रंथों का उसने फ़ारसी में अनुवाद करवाया था। संगीत विद्या के सुनिपुण विद्वानों का भी उसने अपने

१. उज्जेग लोगों के और मुगलों के आपस में चिरकाल से शत्रुता थी। इस शत्रुता का अन्त इस अब्दुल्लाख़ाँ उज्जेग की मृत्यु (ई. स. १५९७) के बाद हुआ था। ई. स. १५७१ में इसी अब्दुल्लाख़ाँ का एक दूत अकबर के दर्बार में आया था। अकबर ने उसका सत्कार किया था। अकबर ने ता. २३ सन् १५८६ ई. को अब्दुल्लाख़ाँ के पास एक पत्र भेजा था। उसमें लिखा था,-

"काफिर फिरंगियों का - जो समुद्र के टापुओं पर आकर बस गये हैं - मुझे नाश करना चाहिए। ये विचार मैंने अपने हृदय में रख छोड़े हैं।"

"उन लोगों की संख्या बहुत बढ़ गई है। वे यात्रियों और व्यापारियों को कष्ट पहुँचाते हैं। हमने खुद जाकर रस्ता साफ़ करने का इरादा किया था..."

देखो डा. विन्सेंट ए. स्मिथ के अंग्रेजी अकबर के पृ. १०, १०४ और २६५।

दर्बार में अच्छा सत्कार किया था। कहा जाता है कि, उसके दर्बार में ५९ कवि थे। फ़ैज़ी उन सब में श्रेष्ठ समझा जाता था। १४२ पंडित और चिकित्सक थे। उनमें ३५ हिन्दु थे। संगीत विशारद सुप्रसिद्ध गायक तानसेन और बाबा रामदास भी अकबर की ही सभा के चमकते हुए हीरे थे। ऐसे भिन्न भिन्न विषयों के विद्वानों का आदर-सत्कार ही बता देता है कि अकबर पूर्ण साहित्यप्रेमी था।

अकबर इस बात को भली प्रकार जानता था कि, बड़े विभागों में पोल भी बड़ी ही होती है। इस बात का उसे कई बार अनुभव भी हुआ था। और जैसे जैसे उसको इस बात का विशेष अनुभव होता गया, वैसे ही वैसे वह स्वयं प्रत्येक बड़े विभाग का निरीक्षण करने लगा। अकबर के अनेक विभागों में एक विभाग ऐसा भी था कि, जिसमें 'जागीर' और 'सर्युधाल' का कार्य होता था। यह एक ऐसा विभाग था कि, अप्रामाणिक मनुष्य इसमें से इच्छानुकूल रकम हड्डप कर सकता था। मगर अकबर इतनी सावधानी से उसकी देखरेख करता कि एक पाई भी उसमें से कोई नहीं खा सकता था। शेख अब्दुल्लनबी<sup>१</sup> के हाथ में जब इस विभाग का

१. सर्युधाल यह चंगताई शब्द है। इसका अर्थ होता है जीवन-पोषण की सहायता। इसका अरबी शब्द है 'मदद-उल-माश' फ़ारसी में इसके लिए 'मदद-इ-माश' शब्द आता है। इसके विषय में अबुल्फ़ज़्ज़ल लिखता है कि, अकबर चार प्रकार के मनुष्यों को, उनके गुज़रे के लिए, पेन्शन अथवा जमीन देता था। उनके प्रकार ये हैं - (१) जो संसार से अलग रहकर ज्ञान और सत्य की शोध करते थे। (२) (३) जो निर्बल एवं अपाहिज होने से कुछ भी कार्य नहीं कर सकते थे। (४) जो उच्च कुल में जन्म पाकर भी ज्ञान के अभाव से अपना भरण-पोषण नहीं कर सकते थे। इन चार प्रकार के मनुष्यों को जो रकम गुज़रे के लिए दी जाती थी वह 'मदद-इ-माश' कहलाती थी। इसका समावेश सर्युधाल की अंदर हो जाता है। देखो आईन-इ-अकबरी के प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवाद का पृ. २६८-२७०

२. शेख अब्दुल्लनबी के पिता का नाम शेख अहमद था। वह इंदरी जिला 'गंगो' (सहारनपुर) का रहनेवाला था। उसके पितामह का नाम अब्दुल्लकदूस था।

कार्य था तब उसने कुछ गोटाला किया था; परंतु अकबर ने तत्काल ही इसको जान लिया था। सन् १५७८ ई. में उसको इस विभाग से दूर कर मख्दूमुल्मुल्क<sup>१</sup> के साथ मक्का भेज दिया था और उस विभाग को अपने अधिकार में लिया था।

अब्दुल्नबी 'सर्वुघाल' भाग में ई. सन् १५६४ से १५७८ तक रहा था। जब कभी किसी को जमीन देनी होती थी तब उसे मुज़फ्फरखाँ से जो उस समय वज़ीर और वकील था सलाह लेनी पड़ती थी। ई. स. १५६४ में उसको 'सदरे सदूर' की पदवी मिली थी। अब्दुल्नबी और मख्दूमुल्मुल्क के आपस में बहुत विरोध था। मख्दूम ने उसके विरुद्ध कई लेख प्रकाशित कर उसे शीरवान के खिज़रखाँ और मीरहङ्गी का खूनी बताया था। अब्दुल्नबी ने मख्दूम को मूर्ख प्रसिद्ध कर शाप दिया था। इसके लिए ही उन्माओं में दो दल हो गये थे। अकबर ने अब्दुल्नबी और मख्दूम दोनों को सन् १५७९ ई. में मक्का की तरफ रवाना कर दिया था और बगेर हुक्म वापिस हिन्दुस्थान में नहीं आने की सख्त ताकीद कर दी थी। अब्दुल्नबी को मक्का जाते समय अकबर ने सतर हजार रुपये दिये थे। यह जब मक्का से लौटकर वापिस आया तब इसकी जाँच करने का काम अबुल्फ़ज़्ज़ल को सौंपा गया था और इसी की देखरेख नीचे वह नजरकैद भी रखा गया था। कहा जाता है कि, एक दिन अबुल्फ़ज़्ज़ल ने उसको, बादशाह के इशारे से, गला घुटवाकर, मरवा डाला था। यह बात इक़बालनामे में लिखी है। विशेष के लिए देखो 'आईन-इ-अकबरी' के अंग्रेजी अनुवाद के प्रथम भाग का पृ. २७२-७३ तथा दबारे अकबरी पृ. ३२०-३२७।

१. मख्दूमुल्मुल्क सुल्तानपुर का रहनेवाला था। उसका नाम मौलाना अब्दुल्लाह था। 'मख्दूमुल्मुल्क' यह उसका खिताब था। उसे 'शेख-उल-इस्लाम' नाम का दूसरा खिताब भी था। उसको दोनों खिताब हुमायूँ ने दिये थे। प्रो. आजाद ने 'दबारे अकबरी' में लिखा है कि, उसको 'शेख-उल-इस्लाम' का खिताब शेरशाह ने दिया था। वह धर्माधि सुन्नी था। वह प्रारंभ ही से अबुल्फ़ज़्ज़ल को भयंकर आदमी बताता आया था। उसने फतवा दिया था कि, - "इस समय मक्का की यात्रा करना अनुचित है। कारण, मक्का जानें के खास दो मार्ग हैं। एक ईरान का और दूसरा गुजरात का। दोनों ही निकम्मे हैं। यदि ईरान में होकर लोग जाते हैं तो वहाँ के शिया लोग यात्रियों को सताते हैं और यदि लोग गुजरात में होकर जलमार्ग से जाते हैं तो मेरी और जीसिस की तस्वीरों को - जो पोर्टुगीजों के जहाजों पर रक्खी रहती

इसी तरह अकबर इस बात का भी पूरा ध्यान रखता था कि और नौकर भी कहीं चोरी करना न सीख जायें। यहाँ तक कि हाथियों की खुराक में से भी कोई चुरा न ले इसलिए उसने अपने हाथियों को तेरह भागों में विभक्त किया और प्रत्येक विभाग के हाथियों को अमुक वजन की खुराक दिलाने लगा। इससे यदि कोई थोड़ी सी चोरी भी खुराक में गो करता था तो वह तत्काल ही पकड़ लिय जाता था।

अकबर ने सब तरह की व्यवस्था करने का गुण अपने पिता से गीखा था। कहा जाता है कि, हुमायूँ में यह गुण उत्तम था; परन्तु उसके दार्जों ने उसे इस गुण को काम में न लाने दिया।

देखना पड़ता है। अर्थात् मूर्तिपूजा देखनी पड़ती है। इसलिए दोनों मार्ग निकम्मे हैं।

मख्दूमुल्मुल्क बड़ा ही चालाक आदमी था। इसकी चालाकियों-युक्तियों के सामने बड़े बड़े लोगों की युक्तियाँ सत्त्वहीन मालूम होती थीं। कहा जाता है कि उसने शेरों और समस्त गरीबों के साथ निर्दयता का व्यवहार किया था। उसकी निर्दयता वो बातें एक एक करके प्रकट होने लगी थीं। इसीलिए बादशाह ने उसे, विवश करके, मक्का भेज दिया था। इसके मकान लाहौर में थे। उनमें कई लंबी चौड़ी कबरें थीं। इन कबरों के लिए कहा जाता था कि वे पूर्व पुरुषों की थीं। उन कबरों पर नीला कपड़ा ढका रहता था और दिन में भी उनके आगे दीपक जला करते थे। मगर वास्तव में वे कबरें नहीं थीं; उनके नीचे तो अनीति से एकत्रित किया हुआ धन गड़ा हुआ था।

मख्दूमुल्मुल्क मक्का से लौटकर ई. स. १५९२ में अहमदाबाद में मर गया। उसके बाद क़ाज़ीअली फतेपुर से लाहौर गया था। उसको वहाँ मख्दूमुल्मुल्क के पार में से बहुत सा धन मिला था। उपर्युक्त क़बरों में कई ऐसी पेटियाँ भी निकलीं कि जिन में सोने की ईंटें थीं। इनके अलावा तीन करोड़ नक़द रुपये भी उनमें से निकले थे।

उपर का हाल जानने के लिए देखो, आईन-इ-अकबरी प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवाद का पृष्ठ १७२-१७३, ५४४, तथा 'दबारे अकबरी' (उर्दू) का पृ. ३११-३१९.

अकबर राज्यव्यवस्था में जैसी सावधानी रखता था वैसी ही सावधानी वह राजनैतिक षड्यंत्रों से बचे रहने में भी रखता था। पूर्व के इतिहास से और अपने अनुभवों से उसे निश्चय हो गया था कि, चंचल राज्य लक्ष्मी के लिए और अपनी सत्ता जमाने के लिए, पिता पुत्र का, पुत्र पिता का और भाई भाई का खून कर डालता है। इस ज्ञान ही के कारण वह अपने सारे कार्य व्यवस्थापूर्वक, नियमित और होंशियारी के साथ करता था। उसको प्रतिक्षण यह भय लगा रहता था कि, कहीं कोई उसकी असावधानी का दुरुपयोग न करे। इसीलिए वह अपनी सारी दिनचर्या नियमित रखता था। उसकी कार्यप्रणाली जानने योग्य है।

वह नींद बहुत ही कम निकालता था। थोड़ा शाम को सोता था और थोड़ा सवेरे के बढ़ते। रात का बहुत बड़ा भाग कामकाज करने ही में बिताता था। दिन निकलने में जब तीन घंटे बाकी रहते तब वह भिन्न भिन्न देशों से आये हुए गवैयों का गायन सुनता। जब एक घंटा रात रहती तब प्रभुभक्ति करने में लगता और दिन निकलने पर थोड़ा बहुत कोई काम होता तो उसे समाप्त कर वह सो जाता।

इससे सिद्ध होता है कि, वह निद्रा बहुत ही कम लेता था। रातदिन में सब मिलाकर केवल तीन घंटे ही वह सोता था। वैद्यकशास्त्र के नियमानुसार अल्पनिद्रा लेनेवाले को मिताहारी होना चाहिए, इसलिए अकबर भी परिमित आहार ही करता था। दिन में भोजन केवल एक बार करता था; उसमें भी वह प्रायः दूध चावल और मिठाई खाता था।

इस तरह अकबर की दिनचर्या ही ऐसी थी कि, जिससे वह किसी समय भी ग़ाफिल नहीं होता था। प्रायः राजषट्यंत्रों का बार रसोई और रसोइयों द्वारा ही होता है; शत्रु इन्हीं के द्वारा अपना मतलब साधते हैं। अकबर इससे अपरिचित नहीं था, इसलिए वह अपने रसोई घर में काम करनेवाले लोगों पर पूरी निगाह रखता था। प्रामाणिक और पूर्ण

विश्वासपात्र मनुष्यों ही को वह रसोई के अंदर रखता था। जो रसोई बनती उसे पहले दूसरा मनुष्य खा लेता उसके बाद बादशाह के पास पहुँचाई जाती। रसोई में से जो रकाबियाँ जाती थीं वे सब मुहर लगकर बंद जाती थीं। अकबर अपने भोजन के संबंध में यह आज्ञा प्रकाशित की थी कि,

“मेरे लिए जो भोजन तैयार हो उसमें से थोड़ा भूखों को दिया जाय।”<sup>१</sup> जिन बर्तनों में अकबर के लिए रसोई बनती थी उन पर महीने में दो बार और जिनमें राजकुमारों और अन्तःपुर की बेगमों के लिए रसोई बनती थी उनमें महीने में एक बार कलई कराई जाती थी। अकबर प्रायः जौखार ढालकर ठंडा किया हुआ, गंगा का पानी पीता था। रसोई घर में इसलिए नंदोवे बाँधे जाते थे कि कहीं कोई जहरी जानवर अकस्मात् भोजन में न गिर जाये।

अकबर की कार्यदक्षता का ऊपर उल्लेख हो चुका है। उससे यह कहा जा सकता है कि, एक राजा में-सम्राट् में-जितनी कार्य-कुशलता चाहिए उतनी उसमें थी। ऐसी कार्य-कुशलता रखनेवाला मनुष्य उदार हृदय का होना चाहिए। और तदनुसार वह उदार हृदयी था भी सही। जब हम अकबर के उच्च विचारों का मनन करते हैं तब हम यह कहे निना नहीं रह सकते कि, अकबर केवल सम्राट् ही नहीं था, बल्कि वह गंभीर विचारक और तत्त्वज्ञानी भी था। यहाँ हम यदि अकबर के कुछ उच्च विचारों का और मुद्रालेखों का उल्लेख करेंगे तो अनुचित न होगा।

“जब परीक्षारूपी संकट सिर पर आ जाय तब, धार्मिक आज्ञा-पालन, गुस्से से माँहें टेढ़ी करने में नहीं होता, परन्तु वैद्य की कड़वी दवा की तरह उसे आनंद के साथ सहन करने में होता है।”

ऋ ॠ ॠ ॠ

१. देखो The Mogul Emperors of Hindustan P. 137. (द मुगल एम्परर्स ऑफ हिन्दुस्थान पृ. १३७)।

“मनुष्य की सर्वोत्कृष्टता का आधार उसका विचारशक्ति (विवेकबुद्धि) रूपी हीरा है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि, वह उसको सदैव उज्ज्वल रखने का प्रयत्न करे-हमेशा विवेकबुद्धि से काम ले।”

ऋ ऋ ऋ ऋ

“यद्यपि ऐहिक और पारलौकिक सम्पत्ति का आधार ईश्वर की योग्य पूजा है, तथापि बालकों की सम्पत्ति का आधार उनके पिताओं की आज्ञा का पालन है।”

ऋ ऋ ऋ ऋ

“खेद है कि, हुमायुँ बहुत बरस पहले ही मर गये इसलिए मुझे अपनी सेवाओं से उन्हें प्रसन्न करने का अवसर बिलकुल ही न मिला।”

ऋ ऋ ऋ ऋ

“स्वार्थन्ध होने से मनुष्य अपने चारों तरफ़ क्या हो रहा है सो नहीं देख सकता। कबूतर के रक्त से सने हुए बिल्ली के पंजो को देखकर मनुष्य दुःखी होता है; परन्तु वही बिल्ली यदि चूहे को पकड़ती है, तो वह खुशी होता है। इसका कारण क्या है? कबूतर ने उसकी क्या सेवा की है कि, उसकी मृत्यु से तो उसे दुःख होता है और अभागे चूहे ने उसका क्या नुकसान किया है कि उसकी मृत्यु से वह प्रसन्न होता है।”

ऋ ऋ ऋ ऋ

“हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं उसमें हमें ऐसे ऐहिक सुख न माँगने चाहिए कि जिनमें दूसरे जीवों को तुच्छ समझने का आभास हो।”

ऋ ऋ ऋ ऋ

“तत्त्वज्ञान संबंधी विवेचन मेरे लिए एक ऐसी अलौकिक मोहिनी

है कि, मैं और कामों की अपेक्षा उसी की और विशेष आकर्षित होता हूँ। तो भी कहीं मेरे दैनिक आवश्यक कर्तव्य में बाधा न पड़े इस खयाल से मैं तत्त्वज्ञान की चर्चा सुनने से अपने मन को जबर्दस्ती रोकता हूँ।”

ऋ ऋ ऋ ऋ

“मनुष्य-चाहे वह कोई भी हो-यदि जगत की माया से छूटने के लिए मेरी अनुमति चाहेगा तो मैं प्रसन्नता पूर्वक उसे दूँगा। कारण,-यदि वास्तव में उसने अपने आपको जगत से-जो कि केवल अज्ञानियों ही को अपने अधिकार में रख सकता है-भिन्न कर लिया है तो उसे उसी में रहने के लिए विवश करना निंद्य और दोषास्पद है। परंतु यदि वह बाह्यांडंबर ही करता होगा तो उसे अवश्यमेव उसका दंड मिलेगा।”

ऋ ऋ ऋ ऋ

“जब बाज पक्षी को-वह दूसरे प्राणियों को मारकर खाता है इसलिए-अल्पायु का दंड मिला है; अर्थात् उसकी उम्र बहुत छोटी होती है; तब मनुष्य जाति के भोजन के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के अनेकानेक साधनों के होते हुए भी जो मनुष्य मांस-भक्षण का त्याग नहीं करता है उसका क्या होगा?”

ऋ ऋ ऋ ऋ

“एक स्त्री की अपेक्षा विशेष स्त्रियों की इच्छा करना, अपने नाश का प्रयत्न करना है। हाँ यदि पहली स्त्री के पुत्र न हो अथवा वांश हो तो दूसरी स्त्री लाना अनुचित नहीं है।”

ऋ ऋ ऋ ऋ

“यदि मैं कुछ पहले समझने लगा होता, तो अपने अन्तःपुर में अपने राज्य की किसी भी स्त्री को बेगम बनाकर न रखता, कारण,-प्रजा मेरी दृष्टि में मेरी सन्तान के समान है।”

ॐ ॐ ॐ ॐ

“धर्मनायक का कर्तव्य है कि, वह आत्मा की परिस्थिति को जाने और उसको सुधारने का प्रयत्न करे। उसका कर्तव्य Ethop की तरह जटा बढ़ा, फटाटूटा गाऊन पहिन श्रोताओं के साथ, रिवाज की तरह, ऊपरि विवाद करना नहीं।”

ॐ ॐ ॐ ॐ

अकबर के विचारों<sup>१</sup> में से ऊपर दिये हुए कुछ उद्धरणों से सहदय पाठक यह कहे बिना न रहेंगे कि, वह जितना राजकीय विषयों का गहरा ज्ञान रखता था उतना ही सामाजिक, धार्मिक और नैतिक विषयों का भी रखता था! वास्तव में अकबर के ऐसे सद्गुण उसके पूर्वजन्म के शुभ कर्मों का ही फल है। अन्यथा करोड़ों मनुष्यों पर हुकूमत करनेवाले यवनकुलोत्पन्न बादशाह में ऐसे विचारों का निवास होना, बहुत ही कठिन है। अकबर को संयोग भी ऐसे ही मिलते गये कि जो उसके विचारों को विशेष दृढ़ बनानेवाले-पुष्ट करनेवाले थे। उसके दर्बार के प्रधान पुरुषों की संगति भी उसके लिए विशेष लाभकारी हुई थी। उनमें भी अबुलफ़ज़्लका प्रभाव तो उस पर बहुत ही ज्यादा था।

ॐ ॐ ॐ ॐ

अपने द्वितीय नायक सम्राट् की उन्नति का सूर्य ठीक मध्याह्न पर आया था। उसकी इच्छित सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हुई थीं। उसका साम्राज्य हिन्दुकुश पर्वत से ब्रह्मपुत्रा तक और हिमालय से दक्षिण प्रदेश तक फैल गया था। सर्वत्र शान्ति फैल गई। विदेशी लोगों के आक्रमण का भय भी न रहा। संक्षेप में कहें तो अकबर भारतवर्ष के गौरव को पीछा जीवित कर दिया। उसने अनेक प्रकार के प्रयत्नों द्वारा भारतवर्ष को

१. अकबर के विशेष विचार जानने के लिए देखो, आईन-इ-अकबरी के तीसरे भाग का, कर्नल जेरिटकृत, अंग्रेजी अनुवाद। पृ. ३८०-४००।

रसातल से उठाकर उन्नति के शिखर पर ला बिठाया; मस्तक पर स्थित सूर्य का प्रकाश सर्वत्र गिरने लगा। इससे अकबर के आनंद की सीमा न रही।

मगर पाठक! भारत का ऐसा सद्गम्य कहाँ है कि उन्नति का सूर्य सदैव उसके मस्तक पर ही झगमगाता रहे। वह सूर्य धीरे धीरे नीचे उतरने लगा। अवनति की छाया गिरने लगी। एक और अकबर के घर ही में फूट फैली और दूसरी और उसके स्नेहियों का क्रमशः अवसान होने लगा। अकबर को जब शान्ति के दिन देखने का सद्गम्य प्राप्त हुआ तब उस पर उपर्युक्त दोनों आघातों ने अपना प्रभाव दिखला दिया। यह कहा जा चुका है कि, कई अनुदार मुसलमान अकबर की प्रवृत्तियों से नाराज थे। इसलिए उन्होंने अकबर के बड़े पुत्र सलीम को अकबर के विरुद्ध उभारा। यहाँ तक कि उसको अकबर की गदी छीन लेने के लिए उत्तेजित किया। सलीम दुश्वरित्र था। उसको किसी धर्म पर श्रद्धा न थी, तो भी संकीर्ण हृदयी मुसलमानों ने इन बातों की परवाह न कर उसे खूब उभारा। दूसरी तरफ सन् १५८९ ईस्वी में अकबर जब काश्मीर की सैर करने गया था उस समय उसका प्रिय अनुचर ‘फ़तहउल्लाह’<sup>२</sup>—जो एक अच्छा पंडित था और संस्कृत ग्रंथों का फारसी में अनुवाद करता था—मर गया। काश्मीर के सीमाप्रान्त में, अबुलफ़तह<sup>३</sup> का जिसने अकबर के धर्म को स्वीकार

१. फ़तहउल्लाह अबुलफ़तह का लड़का था वह खुशरो का दोस्त था इसलिए जहाँगीर ने उसको मरवा डाला था। देखो आईन-इ-अकबरी के प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. ४२५।

२. यह गीलान के मुला ‘अब्दुर्रज्जाक’ का लड़का था। उसका पूरा नाम ‘हकीम मसीउद्दीन अबुलफ़तह’ था। अरफी नामक कवि ने इसकी स्तुति में जो कविता लिखी है उसमें इसका नाम मीर अबुलफ़तह लिखा है उसका बाप गीलान के सदर की जगह बहुत दिन तक रहा था। जब सन् १५६६ ईस्वी में गीलान तहमास्प के हाथ में गया तब वहाँ का राजा अहमदख़ाँ कैद किया गया और अब्दुर्रज्जाक मार डाला गया। इससे हकीम अबुलफ़तह अपने दो भाइयों (हकीम हुमायूँ और हकीम नुरुद्दीन) को साथ ले अपने देश को छोड़ सन् १५७५ में भारत वर्ष में आया।

किया था, देहांत हो गया। सम्राट् काश्मीर गया तब राजा टोडरमल<sup>१</sup> भी जो पंजाब का शासनकर्ता था—इहलोकलीला समाप्तकर चला गया और राजा भगवानदास भी अपने घर आकर मर गया।

अकबर के दर्बार में उसका अच्छा आदर हुआ। राज्य के चौबीस में वर्ष में अबुल्फ़तह बंगाल का सदर और अमीन बनाया गया था। यद्यपि उसकी पदवी एक हज़ारी की थी, तथापि उसकी सत्ता बकील के समान थी। सन् १५८९ ईस्वी में अकबर जब काश्मीर गय था तब अबुल्फ़तह भी उसके साथ ही गया था। वहाँ से 'जावलिस्तान' के लिए रवाना हुआ और रस्ते में बीमार होकर मर गया। अकबर के हुक्म से ख़वाजा शमशुद्दीन उसकी लाश को 'हसनअब्दाल' ले गया और जो कबर अकबर के लिए बनाई थी उसमें वह गाड़ी गया। पीछे लौटते अकबर ने उस कबर पर जाकर प्रार्थना भी की थी। बदाउनी के कथनानुसार अकबर के इस्लाम धर्म छोड़ने में अबुल्फ़तह का भी हाथ था। विशेष के लिए देखो—'आईन-इ-अकबरी' के पहले भाग का अंग्रेजी। अनुवादक पृ. ४२४-४२५ तथा 'दबरि अकबरी' पृ. ६५६-६६६.

१. राजा टोडरमल लाहोर का रहनेवाला था। कुछ लेखकों का मत है कि वह लाहोर जिले के चूनिया गाँव का रहनेवाला था। एसियाटिक सोसायटी ने जो जाँच की है उसके अनुसार वह लाहरपुर जिला अवध का रहनेवाला था। वह जाति का खत्री और गोत्र का टंडन था। सन् १५७३ ईस्वी के लगभग अकबर के दर्बार में दाखिल हुआ था। धीरे धीरे अकबर ने उसे आगे बढ़ाया और अपने राज्यकाल के सत्ताइसवें बरस में उसको बाईस ज़िलों का दीवान और वज़ीर बनाया था। वह जितना हिसाब के काम से प्रसिद्ध हुआ था उतना ही अपने पराक्रम से भी प्रसिद्ध हुआ था। पक्षपात से वह सदा दूर रहता था। कहा जाता है कि उसने हिसाब गिनने की कूँचियों की एक पुस्तक लिखी थी। उसका नाम 'खाजनेइसरार' था। प्रो. आज़ाद के कथनानुसार यह पुस्तक काश्मीर और लाहोर के बृद्ध लोगों में 'टोडरमल' नाम से प्रसिद्ध है।

टोडरमल क्रियाकांड में कटूर हिन्दु था। वह अपने इष्टदेव की पूजा किये बिना कभी अन्नजल ग्रहण नहीं करता था। कई बार उसे अपने धार्मिक नियम पालने में कठिनाइयाँ उठानी पड़ती थी, परन्तु उन्हें सहकर भी अपने नियम पालता था।

जो लोग कहते हैं कि,—नौकर मालिक के वफ़ादार तभी हो सकते हैं जब वे मालिक के विचार, व्यवहार और धर्म के अनुसार चलते हैं। उन्हें टोडरमल के जीवन

इस प्रकार ई. सन् १५८९ में एक करके अकबर के अनुचरों की मृत्यु हुई। इससे उसको बड़ा ही दुःख हुआ।

स्नेहियों की मृत्यु से भी घरका झगड़ा अकबर के लिए विशेष दुःखदाई था। दूसरों की शत्रुता हरतरह से मिटाई जा सकती है; परन्तु अपने पुत्र की शत्रुता को मिटाने में उसने असाधारण विपत्तियाँ झेलीं। तो भी परिणाम कुछ नहीं हुआ। सलीम ने अकबर के साथ यहाँ तक शत्रुता प्रकट की कि, उसने खुले तौर पर अलाहाबाद पर अधिकार कर लिया, और आगे की गद्दी लेने के लिए प्रयत्न प्रारंभ किया। इतना ही नहीं, उसने अपने पिता को विशेष कुद्द करने के लिए अपने नाम के सिक्के भी जारी कर दिये। सम्राट् यदि चाहते तो सलीम को उसकी इस ढिठाई का यथेष्ट दंड दे सकते थे; परन्तु वे बात्सल्य भाव से प्रेरित होकर अन्त समय तक चुप ही रहे। पुत्र के साथ युद्ध करने को तैयार नहीं हुए।

अलावा इसके अकबर उस समय साधनहीन भी हो गया था। क्योंकि उसकी शासननीति और उसके धर्म का समर्थन करनेवाले एक एक करके, सभी परलोकवासी हो गये थे। केवल अबुल्फ़ज़्ल और फैज़ी के समान दो तीन व्यक्तियाँ रही थीं। उनके साथ सलीम की पूर्ण शत्रुता थी। इसलिए उनके द्वारा कोई कार्य नहीं हो सकता था।

इस तरह की गड़बड़ी मची हुई थी ही, इतने ही में अकबर को एक आघात और लगा। जो फैज़ी अकबर का प्यारा था; जिसकी पर ध्यान देना चाहिए। उसका जीवन बतायेगा कि सच्चा वफ़ादार वही नौकर होता है जो अपने धर्म में पूरा वफ़ादार होता है।

अबुल्फ़ज़्ल उसके विषय में कहता है कि, यदि वह अपनी ही बात का अभिमान रखने और दूसरों पर तिरस्कार करनेवाला न होता तो वह एक बहुत बड़ा 'महात्मा' गिना जाता। अन्त में सन् १५८९ ईस्वी १० नवम्बर के दिन भर गया। देखो आईन-इ-अकबरी के प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद। पृ. ३२ तथा दबरि अकबरी का पृ. ५१९-५३४।

कविताओं पर अकबर फिदा था वही फैज़ी सख्त बीमार हो गया । अकबर का उस पर इतना प्रेम था कि, वह हकीमअली<sup>१</sup> को साथ लेकर स्वयमेव उसको देखने के लिए गया । फैज़ी उस समय मरणशय्या पर पड़ा था । हरेक ने फैज़ी के बचने की आशा छोड़ दी थी । अबुलफ़ज़्ल एक कमरे में शोकग्रस्त बैठा था । बादशाह जिस हकीम को ले गया था उस हकीम के इलाज से भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ । अन्त में वह (फैज़ी) इस संसार को छोड़ कर चला ही गया ।

१. हकीमअली गीलान (ईरान) का रहनेवाला था । जब वह ईरान से भारत में आया था तब बड़ा ही गरीब और साधनहीन था । मगर थोड़े ही दिनों में वह अकबर का सन्माननीय मित्र हो गया था । वह ई. सन् १५९६ वे में सातसौ सैना का नायक बनाया गया था । उसको 'जालीनूस उज्जमानी' का खिताब भी मिला था । बदाउनी का मत है कि; वह शीराज के निवासी फ़तह-उल्ला के पास से वैद्यकशास्त्र सीखा था । वह एक धर्माधिकारी था । वह ऐसा खराब वैद्य था कि उसने अनेक रोगियों को यमधाम पहुँचा दिया था और उसने अपने गुरु फ़तह-उल्ला को भी इसी तरह मार डाला था ।

कई ऐसा भी कहते हैं कि अकबर ने उसकी परीक्षा करने के लिए कई रोगी मनुष्यों का और पशुओं का पेशाब, शीशियों में भरवाकर, उसे जाँच के लिए दिया था । उसने सबकी बराबर जाँच की थी । ई. सन् १५८० में वह वीजापुर के बादशाह अलीआदिलशाह के पास एलची बनाकर भेजा गया था । वहाँ उसका अच्छा सत्कार हुआ था । वह वहाँ से नज़रें लेकर सम्राट के पास अभी पहुँचा भी नहीं था कि आदिलशाह का अकस्मात् देहान्त हो गया ।

अकबर जब मृत्युशय्या पर था तब वह इसी की देखरेख में था । जहाँगीर कहता है कि, अकबर को उसीने मारा था । यह भी कहा जाता है कि, वह बहुत ही दयालु था । गरीबों की दवा के लिए वह प्रतिवर्ष छः हजार रुपये खर्च कर देता था । जहाँगीर के समय में, जहाँगीर ने उसे दोहजारी बनाया था । अन्त में हिजरी सन् १०१८ (ई. स. १६१०) की ५ वीं मुहर्रम के दिन उसका देहान्त हुआ था । देखो, - 'आईन-इ-अकबरी' के प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवाद के पृ. ४६६-४६७ ।

अपने प्रिय कवि फैज़ी<sup>१</sup> की मृत्यु से अकबर को इतना दुःख हुआ कि, वह ज़ार ज़ार रोया था । इससे यह बात सहज ही समझ में आ जाती है कि, फैज़ी पर अकबर का कितना प्रेम था । जिस फैज़ी को अकबर सन् १५६८ के पहले जानता भी नहीं था उसी फैज़ी पर अकबर का इतना शोक ! - इतना दुःख ! - इतना विलाप ! आश्चर्य की बात है । जन्मान्तरों के संस्कार कहाँ से कहाँ मेल मिला देते हैं ?

फैज़ी की मृत्यु से अकबर के हृदय में असाधारण आघात लगा । वह यही सोचता था कि, एक और कुटुंब कलह की ज्वाला जल रही है और दूसरी तरफ़ मेरे अनुयायी इस तरह एक एक करके नष्ट होते जा रहे हैं । न जाने मेरा क्या होनहार है ?

अकबर अपने सिर पर आनेवाली विपत्तियों को सहन करता हुआ रहने लगा । उसे जब जब अपने गृहकलह और स्नेहियों की मृत्यु याद आती तब तब वह अधीर हो उठता; उसका हृदय व्याकुल हो जाता । परन्तु

१. फैज़ी का जन्म ई. सन् १५४६ में आगरे में हुआ था । उसका नाम अबुलफ़ज़्ल था । नागोर के रहनेवाले शेख्बुम्बारिक का वह ज्येष्ठ पुत्रा था । उसको अरबी भाषा, काव्यशास्त्र और वैद्यकशास्त्र का बहुत अच्छा ज्ञान था । उसके साहित्य ज्ञान की प्रशंसा सुनकर अकबर ने ई. सन् १५६८ में उसे अपने पास बुलाया था । वह अपनी योग्यता से थोड़े ही दिनों में अकबर का सदा का रहवासी और मित्र बन गया था । सम्राट् उसे शेख़जी कहकर पुकारता था । राज्य के तेतीसवें वर्ष में वह 'महाकवि' बनाया गया था । फैज़ी को दम का रोग हो गया था और उसी रोग से वह राज्य के ४० वें वर्ष में मर गया था । कहा जाता है कि, उसने १०१ पुस्तकें लिखी थीं । वह पढ़ने का बहुत शौकीन था । जब वह मरा तब उसके पुस्तकालय में से ४३०० हस्तलिखित पुस्तकें निकली थीं । उन पुस्तकों को अकबर ने अपने पुस्तकालय में रखा था ।

फैज़ी प्रारंभ में राजकुमार का शिक्षक नियत हुआ था । उसने कुछ समय तक एलची का कार्य भी किया था । विशेष के लिए देखो, - 'आईन-इ-अकबरी' के प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवाद के पृष्ठ ४९०-९१ तथा 'दरबारे अकबरी' पृ. ३५९-४१८.

वह अपने मन को बड़ी कठिनता से समझाता और किसी काम में लगा देता। उस समय अकबर को आश्वासन देनेवाला सिर्फ़ एक अबुलफ़ज़्ल ही रह गया था।

यह बात ऊपर कही जा चुकी है कि, सलीम पूर्णरूप से विद्रोही बनकर अलाहाबाद पर क़ाबिज़ हो गया था और खुल्मखुल्म अकबर से शत्रुता करने लगा था। पिता से तो सलीम विद्रोह करता ही था; परन्तु अबुलफ़ज़्ल पर वह बहुत ही ज्यादा ख़फ़ा था। वह समझता था कि, जब तक सम्राट् के पास अबुलफ़ज़्ल रहेगा, तब तक सम्राट् के सामने दूसरे की एक भी न चलेगी। इसीलिए वह अबुलफ़ज़्ल को मार डालने का प्रयत्न करता था।

जिस समय की हम बात कह रहे हैं उस समय अबुलफ़ज़्ल दक्षिण में शान्ति स्थापन करने के लिए गया हुआ था। इधर सलीम ने बड़े ज़ोरों के साथ विद्रोह का झ़ंडा खड़ा किया। अकबर घबराया। उसने अबुलफ़ज़्ल को लिखा कि, - वहाँ का कार्य अपने पुत्र को सौंपकर तुम तत्काल ही यहाँ चले आओ। अबुलफ़ज़्ल थोड़ी सी सेना लेकर आगे की तरफ रनावा हुआ। रास्ते में से उसने, न मालुम क्या सोचकर, सिर्फ़ थोड़े से सवार अपने साथ रखवे और बाकी सेना को वापिस भेज दिया। उन्हीं थोड़े सवारों के साथ वह आगे की ओर आगे बढ़ा।

उधर आगे में रहनेवाले सलीम के पक्ष के लोगों ने सलीम को ये समाचार भेजे। सलीम ने अबुलफ़ज़्ल को मारने के लिए वीरसिंह<sup>१</sup> नाम के एक डाकू को राजी किया। यह डाकू किसी ख़ास स्थान में बहुत दिनों

१. इसका पूरा नाम वीरसिंह बुंदेला था। कुछ लेखकों ने इसका नाम नरसिंहदेव भी लिखा है। इसके पिता का नाम मधुकर बुंदेला था। और इसके बड़े भाई का नाम था रामचंद्र। सलीम का इस पर बहुत प्रेम था। सलीम ने अबुलफ़ज़्ल के खून के बदले में इसको ओरछा इनाम में दिया था। इसने मथुरा में कई मंदिर बनवाये थे। उनमें तेतीस लाख रुपये व्यय किये थे। उन मंदिरों को

से उपद्रव करता था और आने जानेवाले लोगों को लूट लेता था। उसके साथ बहुत से आदमी थे। अबुलफ़ज़्ल जब 'सराइबरार'<sup>१</sup> पहुँचा तब उसे एक फ़क़ीर ने कहा, - "कल तुम्हें वीरसिंह डाकू मार डालेगा।" अबुलफ़ज़्ल ने उत्तर दिया : - "मौत से डरना व्यर्थ है। इससे बचने का सामर्थ्य किसमें है?"

दूसरे दिन सवेरे भी वहाँ से रवाना होते समय उसे अफ़ग़ानगदाईख़ा ने रोका था; मगर उसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया और वह आगे बढ़ा। थोड़ी ही दूर गया होगा कि, वीरसिंह ने आकर उस पर आक्रमण किया। अबुलफ़ज़्ल के थोड़े से आदमी वीरसिंह के बहुसंख्यक आदमियों के सामने क्या कर सकते थे? अबुलफ़ज़्ल<sup>२</sup> बड़ी वीरता के साथ लड़ा। उसके शरीर पर बारह जख्म लगे तो भी वह लड़ता रहा। अन्त में पीछे औरंगज़ेब ने ई. सं. १०८० में नष्ट किया था। सलीम ने इस लुटेरे को तीन हज़ारी बनाया था। विशेष के लिए देखो, - विन्सेंट स्मिथ कृत अकबर (अंग्रेजी) पृ. ३०५-३०७। तथा आईन-इ-अकबरी के प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवाद का पृ. ४८८।

१. यह 'सराइ बरार' गवालियर से १२ माइल दूर एक अंतरी गाँव है उससे ३ माइल है। अंतरी में अब भी अबुलफ़ज़्ल की कब्र मौजूद है।

२. अबुलफ़ज़्ल का जन्म ई. सन् १५५१ (हि. स. १५८ के मोहर्रम की छठी तारीख़ को) में हुआ था। उसके पिता शेख मुबारिक के उसका नाम वही रखा जो उसके (मुबारिक के) उस्ताद का नाम था। उसके पूर्व जन्म के ऐसे उत्तम संस्कार थे कि, वह वर्ष सवा वर्ष की आयु में ही बातें करने लग गया था। १५७४ में वह अकबर के दर्बार में दाखिल हुआ था। धीरे धीरे उसकी पदवृद्धि होती गई। ई. स. १६०२ में उसको पाँच हज़ारी की पदवी मिली। उसके शान्त स्वभाव, उसकी निष्कपटता और उसकी नमकहलाली के कारण सम्राट् उस पर बहुत स्नेह और विश्वास करता था। अबुलफ़ज़्ल के दर्बार में दाखिल होने के बाद ही अकबर की शासननीति में परिवर्तन हुआ था। अकबर की जाहोजलाली का मूल कारण अबुलफ़ज़्ल ही था इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। अकबर के पीछे रहकर सारा राज-काज करता था। उसीने पीछे से सम्राट् के महान् कार्यों का इतिहास, एक साधारण इतिहास लेखक की तरह, लिखा था। यह कहना जरूरी है कि, यदि अबुलफ़ज़्ल

से एक सवारने आकर उसकी पीठ में भाला मारा । भाला पीठ फोड़कर आगे निकल आया । अबुल्फ़ज़्ल घोड़े से गिर पड़ा । एक दूसरे आदमी ने आकर उसका शिर काट डाला । ई. सन् १६०२ के अगस्त की १२ बीं तारीख़ के दिन उसकी मृत्यु हुई । यह है शत्रुता का परिणाम ।

बस अकबर का बचा हुआ एक अनुयायी, सच्चा सलाहकार संसार से चल बसा । उदार मुसलमानों ने सच्चा तत्त्वज्ञानी खोया और हिन्दुओं ने अपना वास्तविक विधर्मी प्रशंसक गुमाया । जिस समय अबुल्फ़ज़्ल का मस्तक हाथ में लेकर सलीम प्रसन्न हो रहा था उस समय अकबर के समस्त राज्य में शोक छा रहा था ।

अबुल्फ़ज़्ल मारा गया मगर उसकी मृत्यु के समाचार अकबर के पास लेकर कौन जाय ? सम्राट् जिसको प्राणों से भी अधिक प्रिय समझता था और हृदय से जिस पर श्रद्धा रखता था उसीकी मृत्यु के समाचार सम्राट् के पास पहुँचाने की हिम्मत कौन करे ? अन्त में सदा की रीति के अनुसार ने अकबर का इतिहास न लिखा होता तो अकबर की इतनी कीर्ति भी शायद न फैलती । अकबर और अबुल्फ़ज़्ल का संबंध इतना घनिष्ठ हो गया कि, अकबर के विचार ही अबुल्फ़ज़्ल के विचार और अबुल्फ़ज़्ल के विचार ही अकबर के विचार माने जाते थे । दोनों में कोई भेद न था । दर्बार में सभी धर्मों के विद्वानों को जमा करने का प्रस्ताव भी अबुल्फ़ज़्ल ने ही किया था । क्योंकि वह पहले ही से ज्ञान और सत्य का जिज्ञासु था । अकबर के राज्याशासन में और धर्मकार्यों में अबुल्फ़ज़्ल ही की चलती थी । इसी ईर्षा से सलीम ने उसका खून कराया था । सलीम ने अपनी डायरी में इस बात को स्वीकार किया है । प्रो. आज्जाद ने तो यहाँ तक लिखा है कि, अबुल्फ़ज़्ल ने सम्राट् का मन अपनी और इतना आकर्षित कर लिया था कि, अकबर प्रत्येक विषय में उसकी सम्मति के अनुसार ही सारे काम करता था । संक्षेप में कहें तो अबुल्फ़ज़्ल अकबर का दर्बारी, सलाहकार, विश्वस्त, सबसे बड़ा मंत्री, दर्बारा घटनाओं की याददाश्त लिखनेवाला और दीवानी महकमे का हाकिम था । इतना ही नहीं वह अकबर की जिव्हा और बुद्धिमानी था । विशेष के लिए देखो, - 'जर्नल ऑफ द पंजाब हिस्टोरिकल सोसायटी' वॉ. १ ला, पृ. ३१ तथा 'दर्बार अकबरी' पृ. ४६३-५१८.

अबुल्फ़ज़्ल का वकील काले रंग का कपड़ा कमर में बाँधकर दीनभाव से सम्राट् के सामने जा खड़ा हुआ । अबुल्फ़ज़्ल के वकील को इस दशा में आया देख सम्राट् ज़ार ज़ार रोने लगे । उनकी आँखों से जलधारा बह चली । उनका हृदय विदीर्ण होने लगा । उस समय सम्राट् को जितना शोक हुआ उतना शोक शायद पुत्र की मृत्यु से भी न होता । कई दिनों तक वह न किसी से मिला और न उसने कोई राज्य का कामकाज ही किया । वह केवल बंधु-वियोग के दुःख में निमग्न रहा ।

दूसरी तरफ जिन मुसलमानों ने सलीम को ये समाचार दिये थे कि, अबुल्फ़ज़्ल आगे आ रहा हैं उन्हें यह भय लगा की सम्राट् को यदि इस बात की खबर हो जायगी तो वह हमारी जिन्दा चामड़ी खिंचवा लेगा; इससे उन्होंने यह प्रसिद्ध किया कि सलीम ने राज्य के लोभ से अबुल्फ़ज़्ल को मरवा डाला है । सम्राट् यह बात सुनी एक दीर्घ निःश्वास डाली और कहा : - "हाय सलीम ! तूने यह क्या किया ? यदि तू सम्राट् होना चाहता है तो मुझे न मारकर अबुल्फ़ज़्ल को क्यों मारा ?"

अस्तु, सम्राट् ने सलीम को राज्यगदी नहीं देने का निश्चय किया, और अबुल्फ़ज़्ल के पुत्र को तथा राजा राजसिंह<sup>१</sup> और

१. राजा राजसिंह राजा आसकरण कछवाह का पुत्र था । राजा आसकरण राजा बिहारीमल का भाई था । राजसिंह को उसके पिता की मृत्यु के बाद 'राजा' की पदवी मिली थी । उसने बहुत बरस तक दक्षिण में नौकरी की थी । राज्य के ४४ वें बरस में वह दर्बार में बुलाया गया था । दर्बार में आते ही वह गवालियर का सूबेदार बनाया गया था । राज्य के ४५ वें बरस में अर्थात् ई. सन् १६०० में वह शाही सेना में शामिल हुआ था । यह वह सेना थी कि जिसने 'आसीर' के किले पर आक्रमण किया था । बीरसिंह के साथ युद्ध करने में उसने अच्छी बीरता दिखलाई थी, इसलिए ई. सन् १६०५ में वह चार हजारी बनाया गया था । जहाँगीर (सलीम) के राज्य के तीसरे बरस में उसने दक्षिण में कार्य किया था । वहाँ ई. सन् १६१५ में उसकी मृत्यु हुई थी । विशेष के लिए देखो 'आइन-ई-अकबरी' के पहले भाग का अंग्रेजी अनुवाद पृ. ४५८.

रायरायानपत्रदास<sup>१</sup> को फौज देकर रवाना किया और उन्हें कह दिया कि, - “वीरसिंह का मस्तक मेरे सामने उपस्थित करो ।”

मुगल सेना ने जाकर वीरसिंह को घेर लिया । यद्यपि अकबर की आज्ञा के अनुसार कोई वीरसिंह का मस्तक न लेजा सका तथापि उन लोगों ने उसका सर्वस्व जखर लूट लिया । वीरसिंह ज़ख्मी होकर कही भाग गया ।

कौन न कहेगा कि अकबर तब आत्मीय-पुरुष-विहीन हो गया था ? यद्यपि उसके पास लाखों आज्ञापालक मनुष्य थे और शत्रुआत्र एवं धन सम्पत्ति से उसका ख़ज़ाना पूर्ण था तथापि उन आत्मीय-पुरुषों का उसके बहाँ अभाव था जिनकी सहायता से उसने विशाल साम्राज्य स्थापित किया था और कठिन समय में जिनसे सहायता मिलती थी । अखूट धन दौलत और विस्तृत अधिकार के होते हुए भी अकबर की अवनति के चिह्न दिखाई देने लगे । या वह कहिए कि उसकी अवनति का पर्दा उठकर, प्रथम अंक प्रारंभ हो गया था । एक और आत्मीय पुरुषों का अभाव और दूसरी तरफ़ पुत्र का विद्रोह; ऐसी स्थिति में अकबर का धैर्य छूट जाय और उसके हाथ पैर ढीले पड़ जाये तो इसमें आश्वर्य की कौनसी बात है ?

१. यह विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध था । जाति का खत्री था । अकबर के राज्य के प्रारंभ में फ़ैलखाने का मुशरफ़ (Head Clerk) था । ‘रायरायान’ इसकी पदवी थी । ई. सन् १५६८ में चित्तौड़ के आक्रमण में वह प्रसिद्ध हुआ था । ई. सन् १५७९ में वह और मीर अधम दोनों बंगाल के संयुक्त दीवान बनाये गये थे । ई. सन् १६०१ ई. में उसे तीन हज़ारी का पद मिला था । सन् १६०२ में वह वापिस दर्बार में बुलाया गया और सन् १६०४ ई. में वह पाँच हज़ारी बनाया गया । उस समय उसे ‘राजा विक्रमादित्य’ की पदवी मिली । जहाँगीर गद्दी पर बैठा उसके बाद वह ‘मीर आतश’ बनाया गया और यह हुक्म दिया गया कि वह पचार हज़ार गोलन्दाज़ और तीन हज़ार तोपगाड़ियाँ हर समय तैयार रखें । उसके निर्वाह के लिए पन्द्रह जिले अलग लक्खे गये । विशेष के लिए देखो ‘आइन-ई-अकबरी’ के प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. ४६९-४७०.

सम्राट का शेषजीवन

उस समय सुप्रसिद्ध राजा बीरबल<sup>२</sup> भी न रहा था कि जो हास्यरस का फ़व्वरा छोड़कर अकबर को प्रसन्न करता और उसकी सारी चिन्ताओं को दूर कर देता । वह भी ई. सन् १५८६ में जैनखाँ के साथ पहाड़ी लोगों को परास्त करने गया था और वहीं मारा गया था । अकबर विशेष घबराने लगा और सोचने लगा कि, मेरा अब क्या होगा ?

१. राजा बीरबल ब्रह्मभट्ठ था । उसका नाम महेशदास था । प्रारंभ में उसकी स्थिति बहुत ही ख़राब थी; परन्तु बुद्धि बहुत प्रबल थी । बदाउनी के कथनानुसार, अकबर जब गद्दी पर बैठा तब वह कालपी से आकर दर्बार में दाखिल हुआ था । वह वह अपनी प्रतिभा से सम्राट को अपना महरबान बना सका था । उसकी हिन्दी कविताओं की प्रशंसा होने लगी । सम्राट ने प्रसन्न होकर उसे ‘कविराय’ की पदवी दी और हमेशा के लिए अपने पास रख लिया ।

ई. सन् १५७३ में उसे ‘राजा बीरबल’ की पदवी और नगरकोट जागीर में मिला । ई. सन् १५८९ में जैनखाँ को का बाजोड़ और स्वाद के यूसफ़ज़ूर्ज़ी लोगों के साथ युद्ध कर रहा था । उस समय उसने और मदद मांगी थी । इससे हकीम अबुलफ़तह और बीरबल सहायता के लिए भेजे गये थे । कहा जाता है कि, अकबर ने बीरबल और अबुलफ़ज़ूल दोनों के नाम की चिट्ठियाँ डाली थीं । चिट्ठी बीरबल के नाम की निकली । इसलिए इच्छा न होते हुए भी बीरबल को सम्राट ने रखाना किया । इसी लड़ाई में बीरबल ८००० आदमियों के साथ मारा गया था ।

बीरबल की मृत्यु के बाद यह बात भी फैली थी कि, वह अब तक जिन्दा है और नगरकोट की घाटियों में भटकता फिरता है । अकबर ने यह सोचकर इस बात को सही माना कि लड़ाई में हारने के कारण वह यहाँ आते शर्माता होगा अथवा वह संसार से पहले ही विरक्त रहता था, इसलिए, अब वह योगियों के साथ हो लिया होगा । अकबर ने एक ‘एहदी’ को भेजकर नगरकोट की घाटियों में बीरबल की खोज कराई । मगर वह कहीं न मिला । इससे यह स्थिर हो गया कि, बीरबल मारा गया है ।

बीरबल अपनी स्वाधीनता, संगीतविद्या, और कवित्व शक्ति के लिए विशेष प्रसिद्ध हुआ था । उसकी कविताएँ और उसके लतीफ़े लोगों को आज भी याद हैं । विशेष के लिए देखो, - ‘आइन-ई-अकबरी’ के प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. ४०४-४०५, तथा ‘दबारे अकबरी’ पृ. २९५-३१०.

कहावत है कि, - 'अंत सुखी तो सदा सुखी' अन्तिम समय में सुख के साधन मिलने बहुत ही कठिन हैं। अकबर के समान सम्राट् के ऊपर अन्त समय में जो दुःख पड़े उनका वर्णन जब पढ़ते हैं तब हृदय से यह प्रार्थना निकले बिना नहीं रहती कि, - प्रभो ! हमारे शत्रु को भी कभी ऐसा दुःख न हो। जिस सम्राट् के वहाँ किसी बात की कमी न थी; जिस सम्राट् के लिए दुःख की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, उसी सम्राट् की यह दशा !

जैसे जैसे अकबर की अन्तिम अवस्था निकट आती गई, वैसे ही वैसे उसके सिर पर विपत्तियों के बादल भी सघन होने लगे। मानसिक दुश्चिन्ताओं से उसका मन व्याकुल रहने लगा। उसके सलाहकार, सहायक सब चल बसे थे, तीन पुत्रों में से एक, - मुराद शराब में ही डूबा रहकर मर चुका था; दूसरा दानियाल भी उसे कलंकित करनेवाला ही था। वह इतना शराबी और व्यभिचारी हो गया था कि, लोग उससे घबरा उठे थे। उसको सुधारने का सम्राट् ने बहुत प्रयत्न किया; यहाँ तक की उसको शराब पीलानेवाले के लिए प्राणदंड की आज्ञा का हुक्मनामा जारी किया तो भी उसका शराब पीना बंद न हुआ। वह अपनी 'मृत्यु' नाम की बंदूक में शराब मँगवा मँगवाकर पीने लगा। आखिर इसी में उसके प्राण पंखेरू उड़ गये। तीसरा सलीम ही रह गया।

अकबर का उत्तराधिकारी अब केवल सलीम ही रह गया। मगर इस बात को सभी जानते थे कि, सलीम अकबर का पूरा विरोधी है; वह विद्रोही बनकर ही अलाहाबाद में रहता था। अकबर रातदिन की चिन्ताओं से दुर्बल होने लगा, - उसका शरीर सूखने लगा। अकबर की बेगम सलीमाबेगम पिता पुत्र में मेल कराने की इच्छा से अलाहाबाद गई, और सलीम को समझाकर आगरे लाई। सम्राट् की माताने दोनों को समझाकर पिता पुत्र में प्रेम कराया। उदार सम्राट् ने सलीम का अपराध

शमा किया। परस्पर अमूल्य वस्तु की देन-देन हुई। फिर जब सलीम अलाहाबाद जाने लगा तब अकबर ने कहा : - "जब इच्छा हो तब आना"

सलीम भी अपने दो भाइयों से किसी तरह कम दुश्चित्र और शराबी न था। और जब से वह स्वाधीन होकर अलाहाबाद रहने लगा था तब से तो उसने बेलगाम हो जाने से हद ही कर दी थी। अकबर एक बार उसे समझाने के लिए अलाहाबाद जाने लगा था; परन्तु रस्तेही में उसे अपनी माता की बीमारी के समाचार मिले, इसलिए वह वापिस आगरे लौट आया। उस समय उसकी माता का रोग दुःसाध्य हो गया था; जीभ बंद हो गई थी। सिंफ श्वासोच्छ्वास चल रहे थे। अकबर रोने लगा; आखिर वे भी बंद हो गये। सम्राट् की माता ने इस मानवदेह का त्याग कर दिया।

अकबर को बार बार जो आधात लग रहे थे उनकी वेदना को वह माता के आश्वासन से भूल जाता था। आज वह आश्वासन भी जाता रहा। अकबर को उदरामय का रोग भी उसी समय हो गया। पहले आठ दिन तक तो उसने कोई दवा न ली; मगर पीछे से लेने लगा। चतुर हकीमों ने बहुत इलाज किया, मगर फायदा किसीसे कुछ भी नहीं हुआ। रोग बढ़ता ही गया।

सलीम और उसका पुत्र खुसरो भी सिंहासन की आशा से आगरे आ गये। उस समय अकबर की बीमारी में सम्राट् का धातृ-पुत्र 'खाने आज़म अज़ीज़ कोका' राज का काम करता था। वह खुसरो का ससुर भी होता था। जनता का बहुत बड़ा भाग सलीम के दुश्चित्र से परिचित था। इससे वह खुसरो को गद्दी पर बिठाना चाहता था। 'अज़ीज़ कोका' ने जब यह प्रस्ताव सभा में रखा, तब कई मुसलमान कर्मचारियों ने उसका विरोध किया; क्योंकि वे सलीम को चाहते थे। परिणाम यह हुआ कि, अज़ीज़ कोका और राजा मानसिंह ने अपना विचार बदल दिया, इच्छा न होते हुए भी सलीम को गद्दी पर बिठाने का निश्चय किया।

उदरामय के रोग से पीड़ित सम्राट् भारत की दुर्दशा का विचार करता हुआ पलंग पर लेट रहा था । उसके चारों तरफ राज्य के कर्मचारी और निपुण हकीम उदास बैठे थे । उस दिन सन् १६०५ ईस्वी के १५ अक्टोबर का दिन था । समस्त आगरे में उदासी थी । लोगों के मुखों और दिशाओं का नूर उतरा हुआ था ।

अकबर के कमरे में अनेक आदमी चुपचाप बैठे भारत की भावी दशा का विचार कर रहे थे । उसी समय एक युवक ने, अनेक मुसलमानों के साथे प्रवेश कर, अकबर के चरणों में सिर रख दिया । यह सलीम था । सलीम के पथर से हृदय में आखिरी वक्त पिता की दशा से करुणा का संचार हुआ । पिता के दुःख से उसका हृदय भर आया; उसका कंठ बहुत देर तक रुद्ध रहा । फिर वह ज़ारज़ार रोने लगा ।

वाहरे पितृ स्नेह ! तू भी अजब हैं । जो राज्य के लोभ से एक दिन पिता की हत्या करने को तैयार था वही आज पिता के, अनायास, चले जाने की आशंका से ज़ारज़ार रो रहा है ।

सम्राट् ने एक मनुष्य को आज्ञा दी, - “मेरी तलवार, राजकीय पोषाक और राजमुकुट सलीम को दो ।”

वाह ! सम्राट् तेरी उदारता ! पुत्र के, प्राणान्त कष्ट देनेवाले सब अपराधों को भूलकर प्रसन्नता से उसको राज्यगद्दी दी । अकबर को चेत था उस अवस्थाही में सलीम को तीनों वस्तुएँ सौंप दी गई । सम्राट् मानों इसी कार्य की बाट जोह रहा था । इसके समाप्त होते ही वह सबसे अपने अपराधों की क्षमा माँगकर, भारत को शोकसागर में डुबाकर चल बसा । देश का दुर्भाग्य लोट आया; चारों तरफ हाहाकार मच गया । भारत को दुःख के सागर से बचानेवाला, देश की दशा को उच्च स्थिति में लानेवाला, भारत का दूसरा सूर्य भी अस्ताचल में जा बैठा; भारत में पुनः अंधकाराच्छन्न हो गया ।

अकबर का जीवनहंस संसार सरोवर से उड़ गया; पचास वर्ष के अपने शासनकाल में वह अनेक आशाएँ पूरी कर, अनेक अधूरी रख चल बसा । दूसरे दिन सबेरे ही उसके स्थूल शरीर को लोग बड़ी धूमधाम के साथ, मुसलमानी रिवाज के अनुसार, शहर से बाहर ले गये । सलीम और उसके तीन लड़कों ने अरथी को उठाया; किले के बाहिर तक वे उसे लाये । उसके बाद दरबारी और अधिकारी लोग उसे ‘सिंकंदरा’ में ले गये । यह आगरे से चार माइल दूर है । बहुत से हिन्दु और मुसलमान सिकन्दरा तक साथ साथ गये थे । वहाँ सम्राट् का स्थूल शरीर सदा के लिए भारतमाता की पवित्र गोद में समर्पण किया गया ।

पीछे से सम्राट् जहाँगीर ने उस स्थान पर - जहाँ अकबर का शव गाड़ा गया था - एक आदर्श समाधि बनवाकर सदा के लिए अकबर का मूर्तिमान कीर्तिस्तंभ स्थापित कर दिया ।

अकबर एक मुसलमान सम्राट् था तो भी उसकी प्रशंसा केवल हिन्दु-मुसलमान ही नहीं बल्कि युरोपियन विद्वान लोग भी करते हैं । इस बात का हम कई बार उल्लेख कर चुके हैं । वह प्रशंसापात्र क्यों बना ? इसका मुख्य कारण है उसकी उदार राजनीति । उसने प्रजा का कल्याण सामने रखकर ही राज्यतंत्र चलाया था; इसीलिए आज तक विद्वान् उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते आ रहे हैं । उसमें धर्मान्धता और निरर्थक विरुद्धचरण की आदत न थी, इसीलिए कई लेखकों ने तो उसे अन्य सब राजाओं की अपेक्षा उच्च कक्षा में रखा है । भारतवर्ष के राजाओं का इतिहास पढ़ो । उससे मालूम होगा कि, प्रायः मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं, जैनों और बौद्धों पर जुल्म किया है । इसी प्रकार अनेक हिन्दु राजाओं ने भी मुसलमानों या अन्य धर्मवालों को सताने में कोई कसर नहीं रखी । मगर अकबर ही ऐसा था कि, जिसने धर्म या जाति का ख्याल न करके सभी को समान दृष्टि से देखा है और सबका एक सा न्याय किया है । इस बात को अब तक के प्रकरण अच्छी तरह प्रमाणित कर चुके हैं ।

ऐसी राज्यनीति वाले सम्राट् की सभी प्रशंसा करें तो इसमें आश्वर्य की बात कौनसी है ? इस प्रकार की राजनीति उसने रक्खी इसका कारण,- वह समझता था कि 'प्रजा की भलाई में ही राजा की भलाई है ।' अकबर ने अपनी इस उदार राज्यपद्धति का आन्तरिक संगठन ऐसा दृढ़ किया था कि उसका प्रभाव चिरकाल तक रहा था । यदि यह कहें कि, अब तक चला आ रहा है तो भी अनुचित न होगा । इस संबंध में अनेक लेखकों ने बहुत कुछ लिखा है । मगर उन सब के उद्घार न लिख केवल प्रिंगल केनेडी (Pringle Kennedy) नाम के विद्वान् ने अपने ग्रंथ 'द हिस्ट्री ऑफ द ग्रेट मोगल्स' (The History of the Great Moghuls) के प्रथम भाग के ३११ वें पेज में जो उद्घार निकाले हैं उनको उद्धृत कर, इस प्रकरण के साथ ही इस ग्रंथ को भी हम समाप्त करेंगे । वह लिखता है, -

*"That each persons should be taxed according to his ability, that there should be shown no exemption or favour as regards this, that equal justice should be meted out and external foes kept at bay, that every man should be at liberty to believe what he pleases without any interference by the State with his conscience; Such are the principles upon which the British Government in India rests, and such are its real boast and strength. But all these principles were those of Akbar, and to him remains the undying glory of having been the first in Hindustan to put them into practice. These rules now underlie all modern Western States, but few even of such States can boast that these principles are as thoroughly carried out by them in this the twentieth century, as they were by Akbar himself more than three hundred years ago."*

"प्रत्येक मनुष्य से उसकी शक्ति के अनुसार ही 'कर' लेना चाहिए। इस विषय में न किसी पर कृपा दिखानी चाहिए और न किसीको मुक्त

ही करना चाहिए । प्रत्येक का न्याय समान दृष्टि से करना चाहिए और हरेक को उसकी इच्छानुसार, धर्म या सिद्धांत, मानने की स्वाधीनता देनी चाहिए । इन तत्वों पर ही भारत में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हुआ है और ये तत्व ही उसके (ब्रिटिश साम्राज्य की) वास्तविक अभिमान और बल के कारण हैं । मगर सभी तत्व अकबर के हैं और इन तत्वों को भारत में व्यवहृत करने का अमर यश उसी को है । आधुनिक समय में समस्त पाश्चात्य राज्यों में ये नियम हैं; परन्तु उनमें से बहुत ही कम राज्य साभिमान यह कह सकते हैं कि, - अकबर ने तीनसौ वर्ष पहले जिस तरह इन नियमों को पाला था, उसी तरह सम्पूर्णतया इस बीसवीं सदी में हम पाल रहे हैं ।"

## परिशिष्ट ॥

## अकबर बादशाह का फरमान ।

١٣

دیوان خلیل الدین محمد اکبر بادشاہ عمازیب

تفقىء على ملائكة الله بالسماء العلى، فلما أتى الله تعالى بهم أبا عبد الله عليهما السلام  
أعنى لهم بالله عز وجل، فلما أتى الله تعالى بهم أبا عبد الله عليهما السلام

والشليل لـ*بصیر و کن السطه*: الفائز من مفاسد العزة والهيبة  
ـ*بصیر*، ۱۰: ۲۷۸-۲۷۹

لعمليات الالكترونية شفه راتتنا لـ المقايسة، المقابلة الفورية، والكلام المسمى بـ "اللقاء".

از مکانهای رالدیم، نمکخان بود که در آن معرفت آزادت کجیع ضرب امام و بنیان ملار مغلوب شدند. هر که هفت ملائمه معرفت آزادت کجیع ضرب امام و بنیان ملار مغلوب شدند.

میتوانند این را با خود می‌کنند و در آنها می‌گذرد. این اتفاقات را می‌توان با نام *تغیرات فیزیکی* نامید.

فینی و فقر و دانا و ناطنک هر کلم از آنها مظہر چیزات حاصل میں  
اندازه از بزرگی این ایجاد استام بعین در طبق این حوزہ ثابت نظر میں برداشت  
کیا جائے۔

فان ازین است وزیر طایم پذیری عجیب است. ۵۰ و خارجی خاطر نهادهای حادث و سایر هنرها خود استعمال نمی کند.

استدلالات و تفاصیل از راه ب منوال دکر منصال سبلت چایدزه

بری از افزایش آدم بمحض فرود رهایت را می‌گیرد. از طلاقه و اکاره قربت از هر رخت بالغه ایرانی بین ۲۰ تا ۴۰٪ خود ساخته است در این دست.

لطفاً مطلع باشید که این مقاله در سال ۱۳۹۰ تقدیم شده است و ممکن است محتواها با جایگزینی های مذکور در سال ۱۴۰۰ مغایر باشند.

و همان طبق شفاهه بیش کرد در موادرات خلایق اسماج بجهت اینکه همان اخلاق معاشرت مقتضی در شاریا اینان باشد نامه فی

جربه هر دست تلاع ام انداخته مغارب همانند  
که نایه بوده هر کلمه صور در دل و مبتاع باطن باشد بنا اینجا خلاصه برخورد

بعضی افراد بزرگ می‌باشند که آنها نظر احوال عالی شوند و در این

بیان این مطلب در کارهای حکم دادن و اخراج از اسلام در برخورد با افراد مبتدا و مبتلا به این مبتداست. این مبتداها معمولاً از دو دسته هستند: اولیه و ثانیه. این دو دسته مبتداها ممکن است متعاقباً یا معاً باشند. این دو دسته مبتداها معمولاً از دو دسته هستند: اولیه و ثانیه. این دو دسته مبتداها معمولاً از دو دسته هستند: اولیه و ثانیه.

اگر ایشان کو دیگر ہوا رجسٹریشن پر بستے بھیں تو اپنے  
خالیے خانہ میں اسے دار و مختار سلو بائیڈر میں مستغلان و عجائب ایشان ہامیں صاحب جو ہے۔

که تقدیر باشد از این جمیع احترام‌ها و خوشبختی که در آنها داشت. با این نظرات  
۱۷۰۱ از این کارهای اول اینکه کارگران از تأمینات بزرگ نامعادلی داشتند. با این نظرات

تمام عنوان هنرمندان و مترجمان از این مالک جزیار با اصله که به عنوان  
نگارخانه هنری در ایران ایجاد شد.

شتراندز هر قیمتی حکم و لایصال استیبل نیمی معمولی،  
که حکم پادشاهی از زبان امیرات هر دو انتقامی ملایخ خلیفه و امام خلیفه شاهزاده

حدادت دریت و دیبا و آب راهی صورت نمی‌شود؛ بنابراین در این حال کافی نیست با خبرگزاری هرگز از اتفاق آن مطلع شوند. تا اینجا این اتفاق مبتدا از این بروز در عبارات خود صحیح باشد.

نهنگاره سفیر کریم نایند در عهد دانسته تا این زمان بجهاد نهضت علیه باشید

٩٦٩ - ازارة الفن - مطابق ٢٨ شهراً في المليم

مِنْ كُلِّ مَرْءَىٰ نَفْعٌ  
وَمِنْ كُلِّ مَرْءَىٰ خَيْرٌ

نعت  
حافظ امدادی

फरमान नं. १ की दूसरी बाजु

## परिशिष्ट (क)

फ़र्मान नं. १ का अनुवाद ।

—••—  
अल्लाहो अकबर ।

जलालुदीन महम्मद अकबर बादशाह ग़ाज़ी का फ़र्मान ।

अल्लाहो अकबर की मुहर के साथ नक़्ल मुताबिक़ असल फ़र्मान के हैं।

महान् राज्य के सहायक, महान् राज्य के वफ़ादार, श्रेष्ठ स्वभाव और उत्तम गुणवाले, अजित राज्य को दृढ़ बनानेवाले, श्रेष्ठ राज्य के विश्वासभाजन, शाहीकृपा पात्र, बादशाह द्वारा पसंद किये गये और ऊँचे दर्जे के ख़ानों के नमूने स्वरूप 'मुबारिजुदीन' (धर्मवीर) आज़मख़ान ने बादशाही महरबानीयाँ और बख़िशाशों की बढ़ती से, श्रेष्ठता का मान प्राप्त कर जानना कि-भिन्न भिन्न रीति-रिवाजवाले, भिन्न धर्मवाले, विशेष मतवाले और जुदा पंथवाले, सभ्य या असभ्य, छोटे या मोटे, राजा या रंक, बुद्धिमान या मूर्ख-दुनिया के हरेक दर्जे या जाति के लोग, - कि जिनमें का प्रत्येक व्यक्ति खुदाईनूर ज़हूर में आने का, - प्रकट होने का - स्थान हैं और दुनिया को बनानेवालों के द्वारा निर्मित भाग्य के उदय में आने की असल जगह है; एवं सृष्टि संचालक (ईश्वर) की आश्वर्यपूर्ण अमानत है, - अपने अपने श्रेष्ठ मार्ग में दृढ़ रहकर, तन और मन का सुख भोगकर, प्रार्थनाओं और नित्यक्रियाओं में एवं अपने ध्येय पूर्ण करने में लगे रहकर, श्रेष्ठ बख़िशाशें देनेवाले (ईश्वर) से दुआ-प्रार्थना करे कि, वह (ईश्वर) हमें दीर्घायु और उत्तम काम करने की सुमिति दे। कारण,-मनुष्यजातिमें से एक को राजा के दर्जे तक ऊँचा चढ़ाने और उसे सर्दार की पोशाक पहनाने में पूरी बुद्धिमानी यह है कि-वह (राजा) यदि सामान्य कृपा और अत्यंत दया को-जो परमेश्वर की सम्पूर्ण दया का प्रकाश है-अपने सामने रखकर

सबसे मित्रता न कर सके, तो कम से कम सबके साथ सुलेह-मेल की नींव डाले और पूज्य व्यक्ति के (परमेश्वर के) सभी बंदों के साथ महरबानी, मुहब्बत और दया करे तथा ईश्वर की पैदा की हुई सब चीज़ों (सब प्राणियों) को-जो महान् परमेश्वर की पैदा की हुई सब चीज़ों (सब प्राणियों) को-जो महान् परमेश्वर की सृष्टि के फल हैं-मदद करने का ख्याल रखें एवं उनके हेतुओं को सफल करने में और उनके रीति-रिवाजों को अमल में लाने के लिए मदद करे कि जिससे बलवान् ग़रीब पर जुल्म न कर सके और हरेक मनुष्य प्रसन्न और सुखी हो ।

इससे, योगाभ्यास करनेवालों में श्रेष्ठ हीरविजयसूरि 'सेवड'<sup>१</sup> और उनके धर्म के माननेवालों की-जिन्होंने हमारे दर्बार में हाज़िर होने की इज़्ज़त पाई है और जो हमारे दर्बार के सच्चे हितेच्छु हैं-योगाभ्यास की सच्चाई, वृद्धि और ईश्वर की शोध पर नजर रखकर हुक्म हुआ कि,-उस शहर में (उस तरफ के) रहनेवालों में से कोई भी इनको हरकत (कष्ट) न पहुँचावे और इनके मंदिरों तथा उपाश्रयों में भी कोई न उतरे । इसी तरह इनका कोई तिरस्कार भी न करे । यदि उनमें से (मंदिरों या उपाश्रयों में से) कुछ गिर गया या उजड़ गया हौ और उनको मानने, चाहने ख़ेरात करनेवालों में से कोई उसे सुधारना या उसकी नींव डालना चाहता हो तो उसे कोई बाह्य ज्ञानवाला (अज्ञानी) या धर्मान्धि न रोके । और जिस तरह खुदा को नहीं पहचानने वाले, बारिश रोकने<sup>२</sup> और ऐसे ही दूसरे कामों को करना-जिनका करना केवल परमात्मा के हाथ में है-मूर्खता से, जादू समझ, उसका अपराध उन बेचारे खुदा को पहचानने वालों पर लगते हैं और उन्हें

१. श्वेतांबर जैनसाधुओं के लिए संस्कृत में 'श्वेतपट' शब्द है । उसी का अपभ्रंश भाषा में 'सेवड' रूप होता है । वही रूप विशेष बिगड़कर 'सेवड़ा' हुआ है । 'सेवड़ा' शब्द का उपयोग दो तरह से होता है । जैनों के लिए और जैनसाधुओं के लिए अब भी मुसलमान आदि कई लोग प्रायः जैनसाधुओं को सेवडा ही कहते हैं ।

२. देखो पेज ३१, ३२ इसी पुस्तक के ।

अनेक तरह के दुःख देते हैं । ऐसे काम तुम्हारे साये और बन्दोबस्त में नहीं होने चाहिए; क्योंकि तुम नसीबवाले और होशियार हो । यह भी सुना गया है कि, हाजी हबीबुल्लाह<sup>१</sup> ने - जो हमारी सत्य की शोध और ईश्वरीय पहचान के लिए थोड़ी जानकारी रखता है - इस जमात को कष्ट पहुँचाया है । इससे हमारे पवित्र मन को-जो दुनिया का बंदोबस्त करनेवाला है- बहुत ही बुरा लगा है । इसलिए तुम्हें इस बात की पूरी होशियारी रखनी चाहिए कि तुम्हारे प्रान्त में कोई किसी पर जुल्म न कर सके । उस तरफ़ के मौजूदा और भविष्य में कोई किसी पर जुल्म न कर सके । उस तरफ़ के मौजूदा और भविष्य में होनेवाले हाकिम, नवाब या सरकारी छोटा से छोटा काम करनेवाले अहलकारों के लिए भी यह नियम है कि, वे राजा की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा का रूपान्तर समझें, उसे अपनी हालत सुधारने का वसीला समझें और उनके विरुद्ध न चरें, राजाज्ञा के अनुसार चलने ही में दीन और दुनिया का सुख एवं प्रत्यक्ष सम्मान समझें । यह फ़र्मान पढ़, इसकी नक़्ल रख, उनको दे दिया जाय जिससे सदा के लिए उनके पास सनद रहे; वे अपनी भक्ति की क्रियाएँ करने में चिन्तित न हों और ईश्वरोपासना में उत्साह रखें । इसको फ़र्ज समझ इसके विरुद्ध कुछ न होने देना । इलाही संवत् ३५ अज़ार मही की छठी तारीख और खुगदाद नाम के रोज़ यह लिखा गया । मुताबिक तारीख २८ वीं मुहर्रम सन् १९९ हिजरी ।

मुरीदों (अनुयायियों) में से नप्रातिनम्र अबुल्फ़ज़्ल<sup>१</sup> ने लिखा और इब्राहीमहुसेन ने नोंध की ।

नकल मुताबिक् असल के हैं ।

१. इसी पुस्तक के पृष्ठ १९०-१९४ में और 'अकबरनामा के' तीसरे भाग के बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद के पृ. २०७ में इसका हाल देखो।

२. अबुल्फ़ज़्ल अपने नाम के पहले मुरीद विशेषण इसलिए लगाता है कि, वह अकबर के धर्म का अनुयायी था ।

## अकबर बादशाह का फरमान ।

۱۰

مکمل این متن

منان عالیتان مرا فنا صلاست

درین رفت نشان علیت همچو خصیه نهایت  
شیوه: نهاده و بانش، حکماء و حاره از کریمان  
حال استغفار و متمضیان مهار، همراه ملت و سکا در موجود  
حقان میان اسما علیات شان در کتابه دین و متصل کار کا از اینه  
و ماه مطلق از اهم و فیض و سک: هر چون بینه بند زد  
در ظهور و میان اسما مطهور که در این احمد و زین ایل روز بینه  
نکنند تهدید و جای اهم و فیض و سکا بینه که در خانه  
هر دسته ای انسان می باشد ای ای: دینه لام خانه دینه لام ای ای  
احترام و ملکه طبق ای اکلام نماید و بروز نام ای ای ای ای ای  
کن نظر ای ای ای و کلشت بیانت و خذلته علیه میان ای ای ای  
سرمه طبله همچو چیزی که تابار طفیل ای ای ای ای ای ای ای ای  
اند رس دی ای  
دینه دینه ای  
پر کاران قل و روی ای ای خاده باشد و زین معتذل و میان ای ای ای  
واسانه طبله همچو چیزی که میخواسته باشد که تیرنایی برای ای ای ای ای ای  
حی ای  
کرکه ای  
وقایع ای  
میه ای  
نانه میکردند و مطلتگی که باشیل ای ای ای ای ای ای ای ای  
نکنند لای ای  
نایند و طریق و میوش خود را می تزیی باشندیلای که جسمی  
العنان عالیانشان علی بن زید رضیان ایکه نایند که بخوبه ترین  
دیجی پیاره ایکد و ایکد مخلص حکم تعلیم کرد و عده ای  
دافتست ای  
هر چشمی ای ای

میخ خضراء

دہلی مکھت بیان ایڈریشن

میرزا

اے میرزا کرنا دار رجسٹری

شارکھنست بیان ایڈریشن

از خوش بیان ایڈریشن

درالنگ

لریز ترکیب ایڈریشن

رورن مکھت بیان ایڈریشن

آفیس مکھت بیان ایڈریشن

کورسیس مکھت بیان ایڈریشن

درکشہ



फरमान नं. २ की दूसरी बाजु

## پरिशिष्ट (ख)

فَرْمَانِ نَं. ۲ کَا انُوَاد ।

اَللّٰهُ اَكَبَرُ ।

ابو-الْمُعْجَفِ سُلْطَان..... کا ہُکْم.

ਊੰਚੇ ਦਰ੍ਜ ਕੇ ਨਿਸ਼ਾਨ ਕੀ ਨਕਲ ਅਸਲ ਕੇ ਮੁਤਾਬਿਕ ਹੈ ।

ਇਸ ਵਰਕੁ ਊੰਚੇ ਦਰ੍ਜਵਾਲੇ ਨਿਸ਼ਾਨ ਕੋ ਬਾਦਸ਼ਾਹੀ ਮਹਰਬਾਨੀ ਸੇ ਬਾਹਰ ਨਿਕਲਨੇ ਕਾ ਸਮਾਨ ਮਿਲਾ (ਹੈ) ਕਿ,-ਮੌਜੂਦਾ ਔਰ ਭਵਿ਷्य ਕੇ ਹਾਕਿਮਾਂ, ਜਾਗੀਰਦਾਰਾਂ, ਕਰੋਡਿਆਂ ਔਰ ਗੁਜਰਾਤ ਸੂਬੇ ਕੇ ਤਥਾ ਸੋਰਠ ਸਰਕਾਰ ਕੇ ਮੁਸਦਿਧਿਆਂ ਨੇ, ਸੇਵਡਾ (ਜੈਨਸਾਧੁ) ਲੋਗਾਂ ਕੇ ਪਾਸ ਗਏ ਔਰ ਬੈਲਾਂ ਕੋ ਤਥਾ ਭੈਂਸੋ ਔਰ ਪਾਡ੍ਹਾਂ ਕੋ ਕਿਸੀ ਭੀ ਸਮਯ ਮਾਰਨੇ ਕੀ ਤਥਾ ਉਨਕਾ ਚਮਡਾ ਉਤਾਰਨੇ ਕੀ ਮਨਾਈ ਸੇ ਸੰਬੰਧ ਰਖਨੇਵਾਲਾ ਸ਼੍ਰੇ਷਼ਟ ਔਰ ਸੁਖ ਕੇ ਚਿਛੋਂਵਾਲਾ ਫਰਮਾਨ ਹੈ ਔਰ ਉਸ ਸ਼੍ਰੇ਷਼ਟ ਫਰਮਾਨ ਕੇ ਪੀਛੇ ਲਿਖਾ ਹੈ ਕਿ,-“ਹਰ ਮਹੀਨੇ ਮੈਂ ਕੁਛ ਦਿਨ ਇਸਕੇ ਖਾਨੇ ਕੀ ਇੱਛਾ ਨਹੀਂ ਕਰਨਾ ਤਥਾ ਇਸੇ ਉਚਿਤ ਔਰ ਫਰਜ਼ ਸਮਝਨਾ । ਔਰ ਜਿਨ ਪ੍ਰਾਣਿਆਂ ਨੇ ਘਰ ਮੈਂ ਯਾ ਵ੃ਕਥਾਂ ਪਰ ਘੌਸਲੇ ਬਨਾਏ ਹਨੋਂ ਉਨ੍ਹੋਂ ਮਾਰਨੇ ਯਾ ਕੈਦ ਕਰਨੇ (ਪਿੰਜੇ ਮੈਂ ਢਾਲਨੇ) ਸੇ ਦੂਰ ਰਹਨੇ ਕੀ ਪੂਰੀ ਸਾਵਧਾਨੀ ਰਖਨਾ ।” ਇਸ ਮਾਨਨੇ ਲਾਯਕ ਫਰਮਾਨ ਮੈਂ ਔਰ ਭੀ ਲਿਖਾ ਹੈ ਕਿ,-“ਯੋਗਾਭ്യਾਸ ਕਰਨੇਵਾਲਾਂ ਮੈਂ ਸ਼੍ਰੇ਷਼ਟ ਹੀਰਵਿਜਯਸੂਰਿ ਕੇ ਸ਼ਿਵ ਵਿਜਯਸੇਨਸੂਰਿ ਸੇਵਡਾ ਔਰ ਉਸਕੇ ਧਰਮ ਕੋ ਪਾਲਨੇਵਾਲੇ-ਜਿਨ੍ਹੋਂ ਹਮਾਰੇ ਦਬਾਰ ਮੈਂ ਹਾਜ਼ਿਰ ਹੋਨੇ ਕਾ ਸਮਾਨ ਪ੍ਰਾਸ ਹੁਆ ਹੈ ਔਰ ਜੋ ਹਮਾਰੇ ਦਬਾਰ ਕੇ ਖਾਸ ਹਿਤੇਚ੍ਛੁ ਹੈਂ-ਤਨਕੇ ਯੋਗਾਭਿਆਸ ਕੀ ਸਤਿਤਾ ਔਰ ਵ੃ਦਿ ਤਥਾ ਪਰਮੇਸ਼ਵਰ ਕੀ ਸ਼ੋਧ ਪਰ ਨਜ਼ਰ ਰਖ (ਹੁਕਮ ਹੁਆ ਕਿ),-ਇਨਕੇ ਮੰਦਿਰਾਂ ਮੈਂ ਯਾ ਤਾਪਾਤ੍ਰਿਆਂ ਮੈਂ ਕੋਈ ਨ ਠਹਰੇ ਏਂਵਾਂ ਕੋਈ ਇਨਕਾ ਤਿਰਸ਼ਕਾਰ ਭੀ ਨ ਕਰੇ ।

੧. ਦੇਖੋ ਪੀਛੇ ਪੇਜ ੧੬੫, ੧੬੬ ।

अगर ये जीर्ण होते हों और इनके माननेवालों, चाहनेवालों, या खैरात करनेवालों में से कोई इन्हें सुधारे या इनकी नींव डाले तो कोई भी बाह्य ज्ञानवाला या धर्मधृत उसे न रोके। और जैसे खुदा को नहीं पहचाननेवाले, बारिश को रोकने या ऐसे ही दूसरे काम—जो पूज्यज्ञात के (ईश्वर के) काम हैं—करने का दोष, मूर्खता और बेवकूफ़ी के सबब, उन्हें जादू के काम समझ, उन बेचारे खुदा के माननेवालों पर लगाते हैं और उन्हें अनेक प्रकार के दुःख देते हैं तथा वे जो धर्मक्रियाएँ करते हैं उनमें बाधा डालते हैं। ऐसे कामों का दोष इन बेचारों पर नहीं लगाकर इन्हें अपनी जगह और मुकाम पर खुशी के साथ भक्ति का काम करने देना चाहिए, एवं अपने धर्म के अनुसार उन्हें धार्मिक क्रियाएँ करने देना चाहिए।<sup>१</sup>

इससे (उस) श्रेष्ठ फ़र्मान के अनुसार अमल कर ऐसी ताकीद करनी चाहिए कि,—बहुत ही अच्छी तरह से इस फ़र्मान का अमल हो और इसके विरुद्ध कोई हुक्म न चलावे। (हरेक को चाहिए कि) वह अपना फ़र्ज़ समझकर फ़र्मान की उपेक्षा न करे;—उसके विरुद्ध कोई काम न करे। ता. १ शहर्युर महीना, इलाही सन् ४६, मुताबिक़ ता. २५, महीना सफर, सन् १०१० हिज्री।

### पेटा का वर्णन

फरवरदीन महीना; जिन दिनों में सूर्य एक राशी से दूसरी राशी में जाता है वे दिन; ईद; मेहर का दिन; हर महिने के रविवार; वे दिन कि जो दो सूफ़ियाना दिनों के बीच में आते हैं; रजब महीने के सोमवार; आबान महीना कि जो बादशाह के जन्म का महीना है; हरेक शमशी महीने का पहला दिन जिसका नाम ओरमज है; और बारह पवित्र दिन कि, जो श्रावण महीने के अन्तिम छः और भादवे के प्रथम छः दिन मिलकर कहलाते हैं।

निशाने आलीशान की नक़्ल असल के मुताबिक़ है।



मुहर.

(इस मुहर में सिर्फ़ काज़ी ख़ानमुहम्मद का नाम पढ़ा जाता है। दूसरे अक्षर पढ़े नहीं जाते)



मुहर.

(इस मुहर में लिखा है,—‘अकबरशाह मुरीद जाता दराब’<sup>२</sup>)

१. दराब का पूरा नाम मिर्ज़ादाराबखाँ था। वह अबुर्हीम ख़ानख़ाना का लड़का था। विशेष के लिए देखो, ‘आइन-ई-अकबरी’ के पहले भाग का अंग्रेजी अनुवाद। पृ. ३३९.

‘खुशफ़हम’ का खिताब है—के शिष्य हैं,—हमारे दर्बार में थे। उन्होंने दरखास्त और विनति की कि,—“यदि सारे सुरक्षित राज्य में हमारे पवित्र बारह दिन—जो भादों के पर्युषणा के दिन हैं—तक हिंसा करने के स्थानों में हिंसा बंद कराई जायगी तो इससे हम सम्मानित होंगे, और अनेक जीव आपके उच्च और पवित्र हुक्म से बच जायेंगे। इसका उत्तम फल आपको और आपके मुबारिक राज्य को मिलेगा।”

हमने शाही रहेम—नज़र, हरेक धर्म तथा जाति के कामों में उत्साह दिलाने बल्के प्रत्येक प्राणी को सुखी करने की तरफ़ रक्खी है; इससे इस अर्ज को स्वीकारकर दुनिया का माना हुआ और मानने लायक् जहाँगीरी हुक्म हुआ कि,—उल्लिखित बारह दिनों में, प्रति वर्ष हिंसा करने के स्थानों में, समस्त सुरक्षित राज्य में प्राणी—हिंसा न करनी चाहिए और न करने की तैयारी ही करनी चाहिए। इसके संबंध में हर साल नया हुक्म नहीं मँगना चाहिए। इस हुक्म के मुताबिक् चलना चाहिए; फ़र्मान के विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए। इसको अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

### नप्रातिनम्र अबुलखैर<sup>२</sup> के लिखने से और महम्मदसैयद<sup>३</sup> की नोंध से।

१. देखो इस पुस्तक का पेज १६०.

२. यह शेख मुबारिक का पुत्र और शेख अबुल्फ़ज़्ल का भाई था। वह हि. सं. १६७ के जमादी—उलअब्बल की दूसरी तारीख को (आइन—ई—अकबरी के अनुसार २२ वीं तारीख को) जन्मा था। यह बड़ा ही होशियार और भला आदमी था। ज़बान पर उसका अच्छा काबू था। अबुल्फ़ज़्ल की लिखी हुई चिठ्ठियों से मालूम होता है कि, दूसरे भाईओं की अपेक्षा इसके साथ उसका विशेष संबंध था। अबुल्फ़ज़्ल के सरकारी काग़ज़ प्रायः इसी के हाथ में रहते थे। पुस्तकालय की देखरेख भी यही करता था। विशेष के लिए देखो दबरी अकबरी पृ. ३५५—३५६ तथा आइन—ई—अकबरी के प्रथम भाग में दिया हुआ अबुल्फ़ज़्ल का जीवनचरित्र पृ. ३३।

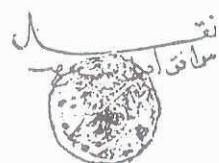
३. यह सुजातखाँ शादीबेग का लड़का था; परन्तु शेख फ़रीद ने इसे गोद लिया था। कारण,—शेख फ़रीद के कोई लड़का नहीं था और उसकी कन्या भी

नक़ल मुताबिक् असल के है।

मुहर.

यह मुहर पढ़ी नहीं जाती।

निःसन्तान मर गई थी। इसके अलावा मीरखाँ नाम के एक युवक को भी शेख फ़रीद ने गोद लिया था। इससे महम्मद सैयद और मीरखाँ दोनों भाई लगते थे। वे बड़े दबदबेसे रहते थे; बादशाह तक की कुछ भी परवाह नहीं करते थे। वे रंगीन लालटेनों और मशालों से सजी हुई नौका में बैठकर, निःसंकोच भाव से बादशाही महल के पास से गुज़रते थे। जहाँगीर ने कई बार उन्हें ऐसा करने से रोका मगर जब यह प्रवृत्ति बंद न हुई तब जहाँगीर की सूचना से महाबतखाँ ने एक मनुष्य भेजकर मीरखाँ को मरवा डाला। इससे शेख फ़रीद ने महाबतखाँ को प्राणदंड देने की बादशाह से अर्ज़ की। मगर महाबतखाँ ने कई रुतबवाले साक्षी पेश कर यह बात प्रमाणित की कि,—मीरखाँ को महाबतखाँ ने नहीं मारा है बल्के महम्मद सैयद ने मारा है। इस तरह महम्मद सैयद के ऊपर यह कलंक लगा था। महम्मद सैयद शाहजहाँ के २० वें बरस में जीवित था। ७०० सौ पैदल सीपाही और ३०० घुड़सवार उसके अधिकार में थे। देखो आइन—ई—अकबरी के प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. ४१६, तथा ४८१।



फरमान नं. ३ की दूसरी बाजु

परमानंद<sup>१</sup>, महानंद और उदयहर्ष तपा यति (तपागच्छ के साधु) विजयसेनसूरि<sup>२</sup>, विजयदेवसूरि<sup>३</sup> और नंदिविजयजी, - जिनको

“जस पट्ठ प्रगट प्रताप उग्यो, विजयसेन दिवाकरो ।  
कविराज हर्षानंद पंडित ‘विवेकहर्ष’ सुहंकरो ।”

इससे स्पष्ट ज्ञात होता कि, वे तपागच्छाचार्य श्री विजयसेनसूरि की आज्ञा में रहनेवाले, और हर्षानंद कवि के शिष्य थे । इसके सिवाय उन्होंने ‘परब्रह्मप्रकाश’ नामक एक पुस्तक भाषा में कविताबद्ध लिखी है । उसके अन्त में भी उन्होंने अपने को तपागच्छ का ही बताया है । उन्होंने बीजापुर में, वि. सं. १६५२ में ‘हीरविजयसूरि रास’ नामक एक छोटी सी पुस्तक लिखी है । उसमें भी उन्होंने अपने को तपागच्छ का बताया है । विशेष आश्र्य तो यह है कि,- श्रीयुत रामलालजीगणि ने विवेकहर्ष को खरतरगच्छ का बताने के साथ ही उनका नाम भी वेष्टहर्ष बताने की बहुत बड़ी भूल की है ।

१. ये विवेकहर्ष के गुरुभाई थे । इनको भी श्रीयुत रामलालजीगणि ने खरतरगच्छ के साधु ही बताया है । मगर यह भी भूल है । परमानंद भी तपागच्छ ही के साधु थे । इस बात को यह तीसरे नंबर का फर्मान भली प्रकार सिद्ध करता है । इसके अलावा उन्होंने जुदी जुदी भाषाओं में ‘विजयचिन्तामणि स्तोत्र’ लिखा है । उसका अन्तिम पद -

“श्री विजयसेनसूरिद सेवक पंडित परमानंद जयकरु”

भी इसी बात को पुष्ट करता है ।

२. देखो इसी पुस्तक का पृष्ठ १५९-१६५ तथा २३६-२३८ ।

३. ये विजयसेनसूरि के शिष्य थे । वि. सं. १६४३ में इन्होंने विजयसेनसूरि से अहमदाबाद में दीक्षा ली थी । सं. १६५६ में इन्हें आचार्य पद मिला था । सं. १६७४ में, ये ‘मांडवगढ़’ में बादशाह जहाँगीर से मिले थे । बादशाह ने प्रसन्न होकर इन्हें ‘महातपा’ का खिताब दिया था । उदयपुर के महाराणा जगतसिंहजी ने उनके उपदेश से ‘पीछोला’ और ‘उदयसागर’ नामक तालाबों में जाल डालना बंद करवा दिया था । राज्याभिषेक के दिन, सालगिरह के दिन तथा भादों महीने में कोई जीवहिंसा न करे इस बात की आज्ञा प्रकाशित की थी । नवानगर के राजा लाखा को, दक्षिण के ईदलशाह को, ईंडर के कल्याणमल्क को और दीव के फिरंगियों को भी उपदेश देकर उन्होंने जीवहिंसा कम कराई थी । वि. सं. १७१३ के आषाढ शुक्ला ११ के दिन ‘उना’ में उनका देहान्त हुआ था । विशेष के लिए देखो- ‘विजयप्रशस्ति महाकाव्य’ तथा ‘ऐतिहासिक सञ्ज्ञायमाला’ भाग पहला आदि ग्रंथ ।

‘खुशफ़हम’ का खिताब है—के शिष्य हैं,—हमारे दर्बार में थे। उन्होंने दरखास्त और विनति की कि,—“यदि सारे सुरक्षित राज्य में हमारे पवित्र बारह दिन—जो भादों के पर्युषणा के दिन हैं—तक हिंसा करने के स्थानों में हिंसा बंद कराई जायगी तो इससे हम सम्मानित होंगे, और अनेक जीव आपके उच्च और पवित्र हुक्म से बच जायेंगे। इसका उत्तम फल आपको और आपके मुबारिक राज्य को मिलेगा।”

हमने शाही रहेम—नज़र, हरेक धर्म तथा जाति के कामों में उत्साह दिलाने बल्के प्रत्येक प्राणी को सुखी करने की तरफ़ रक्खी है; इससे इस अर्ज को स्वीकारकर दुनिया का माना हुआ और मानने लायक् जहाँगीरी हुक्म हुआ कि,—उल्लिखित बारह दिनों में, प्रति वर्ष हिंसा करने के स्थानों में, समस्त सुरक्षित राज्य में प्राणी—हिंसा न करनी चाहिए और न करने की तैयारी ही करनी चाहिए। इसके संबंध में हर साल नया हुक्म नहीं मँगना चाहिए। इस हुक्म के मुताबिक् चलना चाहिए; फ़र्मान के विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए। इसको अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

### नप्रातिनम्र अबुलखैर<sup>२</sup> के लिखने से और महम्मदसैयद<sup>३</sup> की नोंध से।

१. देखो इस पुस्तक का पेज १६०.

२. यह शेख मुबारिक का पुत्र और शेख अबुल्फ़ज़्ल का भाई था। वह हि. सं. १६७ के जमादी—उलअब्बल की दूसरी तारीख को (आइन—ई—अकबरी के अनुसार २२ वीं तारीख को) जन्मा था। यह बड़ा ही होशियार और भला आदमी था। ज़बान पर उसका अच्छा काबू था। अबुल्फ़ज़्ल की लिखी हुई चिठ्ठियों से मालूम होता है कि, दूसरे भाईओं की अपेक्षा इसके साथ उसका विशेष संबंध था। अबुल्फ़ज़्ल के सरकारी काग़ज़ प्रायः इसी के हाथ में रहते थे। पुस्तकालय की देखरेख भी यही करता था। विशेष के लिए देखो दबरी अकबरी पृ. ३५५—३५६ तथा आइन—ई—अकबरी के प्रथम भाग में दिया हुआ अबुल्फ़ज़्ल का जीवनचरित्र पृ. ३३।

३. यह सुजातखाँ शादीबेग का लड़का था; परन्तु शेख फ़रीद ने इसे गोद लिया था। कारण,—शेख फ़रीद के कोई लड़का नहीं था और उसकी कन्या भी

नक़ल मुताबिक् असल के है।

मुहर.

यह मुहर पढ़ी नहीं जाती।

निःसन्तान मर गई थी। इसके अलावा मीरखाँ नाम के एक युवक को भी शेख फ़रीद ने गोद लिया था। इससे महम्मद सैयद और मीरखाँ दोनों भाई लगते थे। वे बड़े दबदबेसे रहते थे; बादशाह तक की कुछ भी परवाह नहीं करते थे। वे रंगीन लालटेनों और मशालों से सजी हुई नौका में बैठकर, निःसंकोच भाव से बादशाही महल के पास से गुज़रते थे। जहाँगीर ने कई बार उन्हें ऐसा करने से रोका मगर जब यह प्रवृत्ति बंद न हुई तब जहाँगीर की सूचना से महाबतखाँ ने एक मनुष्य भेजकर मीरखाँ को मरवा डाला। इससे शेख फ़रीद ने महाबतखाँ को प्राणदंड देने की बादशाह से अर्ज़ की। मगर महाबतखाँ ने कई रुतबवाले साक्षी पेश कर यह बात प्रमाणित की कि,—मीरखाँ को महाबतखाँ ने नहीं मारा है बल्के महम्मद सैयद ने मारा है। इस तरह महम्मद सैयद के ऊपर यह कलंक लगा था। महम्मद सैयद शाहजहाँ के २० वें बरस में जीवित था। ७०० सौ पैदल सीपाही और ३०० घुड़सवार उसके अधिकार में थे। देखो आइन—ई—अकबरी के प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. ४१६, तथा ४८१।

## परिशिष्ट (घ)

### फ़र्मान नं. ४ का अनुवाद ।

—••—  
अबुलमुज़फ़्फ़र सुल्तानशाह सलीम ग़ाज़ी का  
दुनिया द्वारा माना हुआ फ़र्मान ।  
नक़्ल मुताबिक असल के है ।

बड़े कामों से संबंध रखनेवाली आज्ञा देनेवालों, उनको अमल में लानेवालों, उनके अहलकारों तथा वर्तमान और भविष्य के मुआमलतदारों... आदि और मुख्यतया सोरठ सरकार को शाही सम्मान प्राप्त करके तथा आशा रखके मालूम हो कि भानुचंद्र<sup>१</sup> यति और 'खुशफ़हम' का ख़िताबवाले सिद्धिचंद्र<sup>२</sup> यति ने हम से प्रार्थना की कि,- "जज़िआ, कर, गाय, बैल, भैंस और भैंसे की हिंसा, प्रत्येक महीने के नियत दिनों में हिंसा, मेरे हुए लोगों के माल पर कबज़ा करना, लोगों को कैद करना और सोरठ सरकार शत्रुंजय तीर्थ पर लोगों से जो मेहसूल लेती है वह महसूल, इन सारी बातों की आला हज़रत (अकबर बादशाह ने) मनाई और माफ़ी की है ।"<sup>३</sup> इससे हमने भी-हरेक आदमी पर हमारी महरबानी है इससे-एक दूसरा महीना-जिसके अन्त में हमारा जन्म हुआ है-और शामिल कर, निम्नलिखित विगत के अनुसार माफ़ी की है-हमारे श्रेष्ठ हुक्म के अनुसार अमल करना । तथा विजयदेवसूरि और विजयसेनसूरि के-जो वहाँ गुजरात में हैं-हाल की ख़बरदारी करना और भानुचंद्र तथा

- 
- १. देखो पेज १४७-१५८ था २४०-२४१
  - २. देखो पेज १५६-१५८
  - ३. देखो पेज १४०, १४६, १४७, १५२, १६५, १६६

### परिशिष्ट

सिद्धिचंद्र जब वहाँ आ पहुँचें तब उनकी सार सँभालकर, वे जो कुछ काम कहें उसे पूरा कर देना, कि जिससे वे जीत करनेवाले राज्य को हमेशा (कायम) रखने की दुआ करने में दत्तचित्त रहें । और 'ऊना' परगने में एक बाड़ी है । उसमें उन्होंने अपने गुरु हीरजी (हीरविजयसूरि) की चरणपादुका स्थापित की है । उसे पुराने रिवाज के अनुसार 'कर' आदि से मुक्त समझ, उसके संबंध में कोई विघ्न नहीं डालना । लिखा (गया) ता. १४ शहरीवर महीना, सन् इलाही ५५.

### पेटा का खुलासा ।

फ़रवरदीन महीना, वे दिन कि, जिनमें सूर्य एक राशी से दूसरी राशी में जाता है । ईद के दिन, मेहर के दिन, प्रत्येक महीने के रविवार, वे दिन कि जो सूफ़ियाना के दो दिनों के बीच में आते हैं, रजब महीने का सोमवार; अकबर बादशाह के जन्म का महीना-जो आबान महीना कहलाता है । प्रत्येक शमशी (Solar) महीना का पहला दिन, जिसका नाम ओरमज है । बारह बरकतवाले दिन कि जो श्रावण महीने के अन्तिम छः दिन और भादों के पहले छः दिन हैं ।

### अल्लाहो अकबर ।

नक़्ल मुताबिक असल के है ।



मुहर.

(इस मुहर के अक्षर पढ़े नहीं जाते ।)

## जहांगीर बादशाह का फरमान ।

اے اکبر

رہنمای عالم پھر بخواہی  
رہنمای عالم پھر بخواہی

نفاذ ملت  
حکام و عواليٰ و تصدیقیات و ائمہ عالیٰ  
حُل و استپار و شیخ حضرت  
حکام و عواليٰ و تصدیقیات و ائمہ عالیٰ  
کچون یا خیلیتی و سلیمانی: اف چینی فلم یعنی  
رسایدند کہ جو جزیرہ و جنگ و نیز یا حصار ان کا درج  
تو و ملا اصلاح یعنی اس کا دیکھا۔ اسی تصور کے طبق  
مذکورہ واسیکردن مردم ہم کو کروشیں۔ ترکیم سلطنت  
مکثنا حضرت ایڈی معاویہ بن ابی ذئب  
رفع اورت مایہ رہ کا ظفت و مولیہ کردیاں کافر و ایسا  
درم اموریہ کو رس امع لذیذ کیا، تو کوئی قریباً، والوت ماند  
تھے، وہ جیسے کہ دشمن تھے ایڈی مان درود میں وہی دیور  
کلم الشوف علی، وہ شکل رائے، ریزید و یونی ہیں کوئی  
کوئی ایذا لٹھو لا اس الخبر دار برد، مکا، بیان جلد پیش  
دیا جائے شد عایت و ماقبل اے زل منی الہ امرو بیوی  
مرجع آور پانچام رسائل کو بیان عطا ہو رائے دیو دلت  
ذامن اشتغالیہ فرد، ماشی دلہر کے اور کفط باغ کو  
دیا کامیکی لیتی دلہر ایجاد، ایڈیتیں دلہم سلطنت  
فریم یعنی کردا شریعتی زبانی یعنی دلہم پیو، بالیست

شیخ شمس

خوبی، نادرت علیٰ کیا ایسا بخواہی  
سازیل، حسینی فتم و بیوی حمایتی کی دلہم سلطنت  
ایڈیل، بخواہی بخواہی  
دروز فرم دلہر کیتھی دلہم، بالی  
سکریو، سکریو ایسا عاصہ  
دوشیزہ ملک جس



فارمان نं. ४ की दूसरी बाजु



(इस मुहर में काजी अब्दुलसमी<sup>१</sup> का नाम है ।)

नक़ल मुताबिक् असल के है ।



(इस मुहर में काजी खानमुहम्मद का नाम है । दूसरे अक्षर पढ़े नहीं जाते ।)

१. यह 'मियाँकाल' नाम के पहाड़ी प्रदेश का रहनेवाला था । यह प्रदेश समरकंद और बुखारा के बीच में है । बदाउनी कहता है कि यह धन के लिए शतरंज खेलता था । शराब भी बहुत पीता था । हि. सं. ९९० में अकबर ने उसे काजी जलालुद्दीन मुल्तानी के स्थान में काजिल्कुजात बनाया था । देखो,-आइन-ई-अकबरी के प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद पृ. ५४५.

## परिशिष्ट ( ड़ )

फ़र्मान नं. ५ का अनुवाद ।

अल्लाहो अकबर ।

हक् को पहचानेवाले, योगाभ्यास करनेवाले विजयदेवसूरि को, हमारी खास महरबानी हासिल कर मालूम हो कि,-तुमसे 'पत्तन'<sup>२</sup> में मुलाकात हुई थी । इससे एक सच्चे मित्र की तरह (मैं) तुम्हारे प्रायः समाचार पूछता रहता हूँ । (मुझे) विश्वास है कि तुम भी हमारे साथ सच्चे मित्र का (तुम्हारा) जो संबंध है उसको नहीं छोड़ोगे । इस समय तुम्हारा शिष्य दयाकुशल<sup>३</sup> हमारे पास हाजिर हुआ है । तुम्हारे समाचार उसके द्वारा मालूम हुए । इससे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई । तुम्हारा शिष्य भी अच्छी तर्कशक्ति रखनेवाला और अनुभवी है । यहाँ योग्य जो कुछ काम हो वह

२. 'पत्तन' से गुजरात के 'पाटण' को नहीं मगर मांडवगढ़ (मालवा) को समझना चाहिए । क्योंकि, जहाँगीर और विजयदेवसूरि मांडवगढ़ में मिले थे । इस भेट का पूर्ण वृत्तान्त विद्यासागर के प्रशिष्य अथवा पंचायण के शिष्य कृपासागर ने 'श्री नेमिसागर निर्वाणरास' में दिया है । उसमें भी जहाँ मांडवगढ़ के शरावकों का वर्णन लिखा है वहाँ स्पष्ट लिखा है कि,-

वीरदास छाजू बल्ली ए, शाह जगू गुण जाण के;

'पाटण' ते वसे इत्यादिक श्रावक घणाए ॥ ९१ ॥

(जैनरासमाला, भाग पहला पृ. २५२)

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि, 'मांडवगढ़' उस समय पाटण के नाम से भी ख्यात था ।

३. ये वेही दयाकुशलजी हैं जिन्होंने विक्रम संवत् १६४९ में विजयसेनसूरि की स्तुति में 'लाभोदय' रास लिखा है । इनके गुरु का नाम कल्याणकुशल था ।

जहाँगीर बादशाह ने विजयदेवसूरि पर लिखा हुआ पत्र ।

الله اکبر

حَقِّ شَهَادَةِ صُورَجِيِّ دِيْسُورِ مُجَاهَاتِ خَصَصَ لِدِعْلُومِ نَمَرِكَ حَرَاجَ  
 بِشَهَادَةِ شَدَّهَ بُودَ دِلَوَزِمِ خَاصِ شَارَادِرِهِ أَرَاحَالِ شَاهِ أَنْزِيلِكَ  
 شَاهِمَانِجَافِ رَانِطِهِنِّيَّ أَزَدَتْ كُواهِرِهِ دِرِبِرِلَا حَلَّلَهَ شَادِيَكِيلِهِ  
 مَارِسِزَتْ نَزَدِهِنِّيَّ أَزَدِعَلَمِشَدِبِ خَوشِلَّهِمِ وَخَلَمِ شَاهِمِسَخِيَّ  
 دِمَغَرَلِنَتْ دِرِبَارِهِ زَمَهَمِ دَارِكِ دَانِجِ وَفِرِكَبِهِمَوَاقِيَّ كَنْ كَرِهِمَزِدِهِ  
 هَرِمَكَارِدِهِنِّيَّ كَلَّهِ خَوِدِنِزِيدِهِ كَرِدِلَهِ حَرَستِ مَعْدَمِ مَكَرَهِهِ كَلَّهِ  
 مَسْتَوِهِ خَرَاهِمِهِ خَطَارِهِنِّيَّ بَحِ دَارِتِرِهِنِّيَّ بَعِيُونِشَغَوَارِهِ دِيْبِلِهِ  
 دِوَامِ حَرَتِ بَهِلَهِ حَفَرَتِ بَهِلَهِ شَغَلِهِنِّيَّ لَهِهِنِّيَّ كَرِلَهِنِّيَّ ۱۹۷۱



तुम अपने शिष्य को लिखना (जिससे) हुजूर को मालूम हो जाय । हम उस पर हरेक तरह से ध्यान देंगे । हमारी तरफ से बेफ़िक्र रहना और पूजने लायक ज़ात की पूजा कर हमारा राज्य कायम रहे इस प्रकार की दुआ करने के काम में लगे रहना । लिखा ता. १९ महीना शाहबान, सन् १०२७.

मुहर

इस मुहर में, जहाँगीर, मुरीद और शाह नवाज़खाँ इतने अक्षर हैं ।

१. इसका खास नाम ईरज़ था । वह अपनी वीरता के लिए बहुत प्रसिद्ध हुआ था । जब यह युवा था, तब 'खानखान-ई-जवान' कहलाता था । राज्य के चालीस वें वर्ष में यह चारसौ का अधिपति बनाया गया था । राज्य के अड़तालीसवें वर्ष में इसने मलिकअम्बर के साथ 'खारकी' में लड़कर 'बहादुर' की पदवी हासिल की थी । शाहजहाँ के समय में शाहनवाज़खान-ई-शफ़वी नाम का एक उमराव हुआ है । इसलिए दोनों को भिन्न भिन्न बताने के लिए इतिहास लेखक इसको 'शाहनवाज़खान-ई-जहाँगीरी' लिखते हैं । जहाँगीर ने इसको हि. स. १०२० में 'शाहनवाज़खाँ' पदवी देकर तीन हज़ारी बनाया था और हि. स. १०२७ में पाँच हज़ारी बनाया था । जहाँगीर के राज्य के बारहवें वर्ष में इसने दक्षिण में कुमार शाहजहाँ की नौकरी कर ली थी । यह एक अच्छा सैनिक था । परन्तु कपड़ों के विषय में यह बहुत ही लापरवाह था । इसकी एक कन्या का व्याह शाहजहाँ के साथ हुआ था । ग्रांट-लिखित मध्यप्रान्तों के गेजेटियर के अनुसार इस ईरज़ (शाहनवाज़) की कब्र बुरहानपुर में है । यह कब्र इसकी जिन्दगी ही में तैयार हुई थी । हि. स. १०२८ में यह अत्यधिक मदिरा पीने से मर गया था । कहा जाता है कि, अकबर अपने फ़र्मानों में इस ईरज़ और दूसरे फ़र्मानों के अन्तिम नोट में (पृ. ३८१ में) उल्लिखित दाराब का नाम किसी न किसी तरह से लारखता था । विशेष के लिए देखो आइन-ई-अकबरी के प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद पृ. ३३९, ४९१, तथा दबरी अकबरी पृ. ६४२-६४४.

## परिशिष्ट ( च )

फर्मान नं. ६ का अनुवाद ।

अल्लाहो अकबर ।

नूरुदीन महम्मद जहाँगीर बादशाह ग़ाज़ी का फर्मान ।

हमेशा रहनेवाला यह आलीशान फर्मान, ता. १७ रजबुल्मुरज्जब हि.  
स. १८२४ का है, उसकी नक़्ल ।

अब इस फर्मान आलीशान को प्रकट और प्रसिद्ध करने का, महत्व का, प्रसंग प्राप्त हुआ है । हुक्म दिया जाता है कि-मापी हुई दस वीधे ज़मीन, खंभात के समीप चौरासी परगने के महम्मदपुर (अकबरपुर) गाँव में निम्नलिखित नियमानुसार चंदू संघवी को “मदद-ई-मुआश” नाम की जागीर खरीफ़ के प्रारंभ-नौशका ने ईल (जुलाई) महीने से हमेशा के लिए दी जाय, जिससे उसकी आमदनी का उपयोग हर एक फ़सल और हर एक साल में वह अपने ख़र्च के लिए करे और असीम बादशाही अखंडित रहे इसके लिए वह प्रार्थना करता रहे ।

वर्तमान के एवं अब होनेवाले अधिकारियों, पटवारियों, जागीरदारों तथा माल के ठेकेदारों को चाहिए कि-वे इस पवित्र एवं ऊँचे हुक्म को हमेशा बजालाने का प्रयत्न करें । ऊपर लिखे हुए ज़मीन के टुकड़े को नापकर और उसकी मर्यादा बाँधकर वह जमीन चंदू संघवी को दी जाय । इसमें कुछ भी फेरफार या परिवर्तन न किया जाय । एवं उसे तकलीफ़ भी न दी जाय । उससे किसी तरह का ख़र्च भी न माँगा जाय । जैसे,- पट्टा बनाने का ख़र्च, नज़राना, नापने का ख़र्च, ज़मीन क़बज़े में देने का ख़र्च, रजिस्टरी का ख़र्च, पटवार फ़ंड, तहसीलदार और दारोग़ा का ख़र्च,

## परिशिष्ट

बेगार, शिकार और गाँव का ख़र्च, नंबरदारी का ख़र्च, जेलदारी की प्रति ग़ैंकड़ा दो रु. फ़ीस, कानूगों की फ़ीस, किसी ख़ास कार्य के लिए साधारण वार्षिक ख़र्च, खेती करने के समय की फ़ीस, और इसी प्रकार की समस्त दीवानी सुल्तानी तकलीफ़ों से वह हमेशा के लिए मुक्त किया जाता है । इसके लिए प्रतिवर्ष नवीन हुक्म और सुचना की आवश्यकता नहीं है । जो कुछ हुक्म दिया गया है, वह तोड़ा न जाय । सभी इसको अपना गरकारी कार्य समझें ।

ता. १७ अस्फन्दारमुज़्ज-इलाही महीना, १० वाँ वर्ष ।

## दूसरी तरफ़ का अनुवाद ।

ता. २१ अमरदाद, इलाही १० वाँ वर्ष,-बराबर रजबुल्मुरज्जब  
हि. स. १०२४ की १७ वीं तारीख, गुरुवार ।

पूर्णता और उत्तमता के आधाररूप, सच्चे और ज्ञानी ऐसे सैयद अहम्मद कादरी के भेजने से; बुद्धिशाली और वर्तमान समय के जालीनूम (धन्वन्तरी वैद्य) एवं आधुनिक ईसा जैसे जोगी के अनुमोदन से, वर्तमान समय के परोपकारी राजा सुबहान के दिये हुए परिचय से और सबसे नम्र शिष्यों में से एक तथा नोंध करनेवाले इसहाक के लिखने से चंदू संघवी, पिता बोरू ( ? ), पितामह वजीवन (वरजीवन) आगरे का रहनेवाला, सयजवन (सेवड़ों को माननेवाला), जिसका कपाल चौड़ा, भ्रमर चौड़ी, गेड़िये के जैसे नेत्र, काला रंग, मुँड़ी हुई डाढ़ी, मुँह के ऊपर बहुत से नेचक के दाग, दोनों कानों में जगह जगह छेद, मध्यम ऊँचाई, और जिसकी करीब ६० वर्ष की उम्र है, उसने बादशाह की ऊँची दृष्टि को एक रल से जड़ी हुई अंगूठी, १० वें वर्ष के इलाही महीने की २० वीं तारीख के दिन भेट की । और अर्ज की कि अकबरपुर गाँव में १० वीधा जमीन, उसको सदृत गुरु विजयसेनसूरि के मंदिर, बाग, मेला और सम्मान की

الله يحيي الموتى  
الله يحيي الموتى

می خواهیم که در سرخ ۱۰ میلادی هر سی هزار این گذشت و در نتیجه این می خواهیم که  
دستیکنیز می خواهیم که در سرخ ۱۰ میلادی هر سی هزار این گذشت و در نتیجه این می خواهیم  
در میان حیوانات که در سرخ ۱۰ میلادی هر سی هزار این گذشت و در نتیجه این می خواهیم  
نو پیش از آن که در سرخ ۱۰ میلادی هر سی هزار این گذشت و در نتیجه این می خواهیم  
و در سرخ ۱۰ میلادی هر سی هزار این گذشت و در نتیجه این می خواهیم

जहांगीर बादशाह का फरमान ।

यादगार के लिए दी जाय। इसलिए सूर्य की किरणों की तरह चमकनेवाला और सब दुनिया के मानने योग्य हुक्म हुआ कि-चंदू संघवी को गाँव अकबरपुर, परगना चौरासी में-जो खंभात के समीप है-दश वीघे खेती की जमीन का टुकड़ा मदद-इ-मुआश नाम की जागीर स्वरूप दिया जाय। हुक्म के अनुसार जाच करके लिखा गया। मार्जिन में लिखा है कि “लिखनेवाला सच्चा है।”

जुमलुतुल्मुल्क, मदारुलमहाम एतमादुद्दौला का हुक्म :- “दूसरी बार अर्ज की जाय।”

मुखलीसखान ने-जो महरबानी करने योग्य हैं-बादशाह के सामने दूसरी बार अर्ज पेश की (पुनः यह पत्र पेश किया जाता है।) ता. २१ माह यूर, इलाही स. १०.

जुमलुतुल्मुल्क, मदारुलमहाम का हुक्म :- “खरीफ के प्रारंभ नौशकानेईल-से हुक्म लिखा जाय।”

जुमलुतुल्मुल्की मदारुल

महामी का हुक्म :-

“अरजी (वाजिब) बनाई जाय।”

अन्तिम हुक्म

जुमलुतुल मदारुल महाम का

यह है कि -

“मौज़ा महम्मदपुर से इस  
(चंदू संघवी) को माफी  
दी जाय।”

मुहर.

(बराबर पढ़ी नहीं जाती)

यह नक़्ल मुताबिक़ असल के है।

## परिशिष्ट (छ)

पोर्टुगीज़ पादरी पिनहरो (Pinheiro) के दो पत्र<sup>१</sup>।

पिनहरो नाम के एक पोर्टुगीज़ पादरी ने, लाहोर से ता. ३ सितंबर सन् १५९५ के दिन अपने देश में एक पत्र लिखा था। उसका एक वाक्य डा. विन्सेंट ए. स्मिथ ने अपने अंग्रेजी ‘अकबर’ नाम के ग्रंथ में दिया है। वह वाक्य इस पुस्तक के १७१ वें पेज में उद्धृत किया गया है। उसने जैनियों से संबंध रखनेवाली जो बातें उस पूरे पत्र में लिखी थीं, वे ये हैं :-

“This King (Akbar) worships God and the sun, and is a Hindu [Gentile]; he follows the sect of Vertei, who are like monks living in communities [congregation] and do much penance. They eat nothing that has had life [anima] and before they sit down, they sweep the place with a brush of cotton, in order that it may not happen [non si affironti] that under them any worm [or ‘insect’, vermicells] may remain and be killed by their sitting on it. These people hold that the world existed from eternity, but others say No,-many worlds having passed away. In this way they say many silly things, which I omit so as not to weary your Reverence.<sup>२</sup>”

१. पिनहरो के इन दोनों पत्रों का अंग्रेजी अनुवाद सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. विन्सेंट ए. स्मिथ ने अपने ता. २-११-१८ के पत्र के साथ पूज्यपाद गुरुवर्य शास्त्रविशारद-जैनाचार्य श्री विजयधर्मसूरि महाराज के पास भेजा था।

२. पेरुशी पृ. ६९ में छपे हुए पत्र के लेटिन अनुवाद का यह तर्जुमा है। यहीं बात मैक्कलेगन ने ‘जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बैंगल’ के बॉल्युम ४५ के प्रथम अंक के ७० वें पृ. में लिखी है।

“अकबर बादशाह ईश्वर और सूर्य को पूजता है और वह हिन्दु है। वह व्रती<sup>१</sup> सम्प्रदाय के अनुसार आचरण करता है। वे मठवासी साधुओं की भाँति बस्ती में रहते हैं और बहुत तपस्या करते हैं। वे कोई सजीव वस्तु नहीं खाते। बैठने के पहले रूई (ऊन) की पीछी (ओघा) से जमीन को साफ़ कर लेते हैं ताके ज़मीन पर कोई जीव रहकर उनके बैठने से मर न जाय। इन लोगों की मान्यता है कि, संसार अनादि है। मगर दूसरे कहते हैं कि,-अनेक संसार हो गये हैं। ऐसी मूर्खतापूर्ण (?) बातें लिखकर आप श्रीमान् को दिक् करना नहीं चाहता।”

इसी तरह उसने (पिनहरो ने) ता. ६ नवम्बर सन् १५९५ के दिन अपने देश में एक पत्र लिखा था। उसमें जैनों के संबंध में यह लिखा था,-

*“The Jesuit narrates a conversation with a certain Babansa (? Baban Shah) a wealthy notable of Cambay, favourable to the Fathers.”*

*“He is a deadly enemy of certain men who are called Verteis, concerning whom I will give some slight information [delli quali toccano alcuna cosa].”*

The Verteis live like monks, together in communities [congregation]; and when I went to their house [in

१. ‘व्रती’ अन्य कोई नहीं, जैनसाधु ही हैं। उस समय के बहुत से लेखकों ने जैनसाधुओं के लिए ‘व्रती’ शब्द ही लिखा है। ‘डिस्क्रिप्शन ऑफ एशिया’ नामक पुस्तक-जो ई. सन् १६७३ में छपा है-के ११५, २१३, २३२ आदि पृष्ठों में इस देश के जैन साधुओं का वर्णन दिया है वह ‘व्रती’ शब्द ही से दिया है। और तो और सुप्रसिद्ध गुर्जर कवि शामलदास ने भी ‘सूडाबहोतेरी’ में ‘व्रती’ शब्द ही दिया है। ‘व्रती’ शब्द का व्युत्पत्ति-अर्थ होता है,-व्रतमस्याऽस्तीति व्रती (जिसको व्रत होता है उसे व्रती कहते हैं।) मगर रूढ़ि में ‘व्रती’ शब्द जैनसाधुओं के लिए ही व्यवहृत हुआ है और होता है।

Cambay] there were about fifty of them there. They dress in certain white clothes; they do not wear anything on the head; their beards are shaven not with a razor, but pulled out, because all the hairs are torn out from the beards, and likewise from the head, leaving none of them save a few on the middle of the head up to the top, so that they are left a very large bald space.

They live in poverty; receiving in aims what the giver has in excess of his wants for food. They have no wives. They have (the teaching of) their sect written in the script of Gujarat. They drink warm water, not from fear of catching cold, but because they say that water has a Soul, and that drinking it without heating it kills its Soul, which God created, and that is great sin, but when heated it has not a Soul. And for this reason they carry in their hands certain brushes, which with their handles look like pencils, made of cotton (bambaca) and these they use to sweep the floor or pavement whereon they walk, so that it may not happen that the Soul [anima] of any worm be killed. I saw their prior and superior (maggiore) frequently sweep the place before sitting down by reason of that scruple. Their chief Prelate or supreme Lord may have about 100,000 men under obedience to him, and every year one of them is elected. I saw among them boys of eight or nine years of age, who looked like Angels. They seem to be men, not of India, but of Europe. At that age they are dedicated by their fathers to this Religion.



“They hold that the world was created millions of millenniums ago, and that during that space of time God has sent twenty three Apostles, and that now in this last stage, he sent another one, making twenty-four in all,

which must have happened about two thousand years ago, and from that time to this they possess scriptures, which the others [Apostles] did not compose.

Father Xavier and I discoursed about that saying to them that this one (questo) [Seil apparently the last Apostle] concerned their Salvation.

The Babansa aforesaid being interpreter, they said us, we shall talk about that another time. But we never returned there, although they pressed us earnestly, because we departed the next day.<sup>१</sup>

“पादरियों के अनुकूल, खंभात के बाबनसा<sup>२</sup> ( ? बाबनशाह ) नामक एक धनाढ्य उमराव के साथ पादरी की बातचीत हुई थी । उसका वर्णन उसने इस प्रकार किया है,-”

“वह ‘ब्रती’ नाम से पहचाने जानेवाले मनुष्यों का कट्टर शत्रु है । मैं उन ब्रतियों से संबंध रखनेवाली कुछ बातें यहाँ लिखूँगा ।”

“ब्रती, साधुओं की तरह समुदाय में रहते हैं । मैं जब उनके स्थान (खंभात में) पर गया, तब उनमें के लगभग पचास वहाँ थे । वे अमुक प्रकार के सफेद कपड़े पहनते हैं, शिर पर कुछ नहीं रखते; उस्तरे से डाढ़ी नहीं कराते; मगर वे डाढ़ी के बाल खींच लेते हैं अर्थात् डाढ़ी के और शिर के बालों का वे लोच करते हैं । सिर के ऊपर बीच के भाग में ही थोड़े से बाल होते हैं; इससे उनके सिर में बड़ी सी टाल (Bald) हो जाती है ।”

“वे निर्ग्रेथ हैं । जो खाद्य पदार्थ गृहस्थों के यहाँ आवश्यकता के उपरांत बढ़ा हुआ होता है वही वे भिक्षा में लेते हैं । उनके स्त्रियाँ नहीं होतीं । गुजराती भाषा में उनकी धर्मशिक्षाएँ लिखी रहती हैं । वे गर्म पानी

१. पेरुशी के पृष्ठ ५२ में से किया हुआ अनुवाद । यह बात मैकलेगन ने भी अपने लेख के ६५ वें पृष्ठ में लिखी है ।

२. बाबनसा यह एक पारसी गृहस्थ का नाम है । ऐसा मालूम होता है कि, उसका शुद्ध नाम बहमनशा होगा । उस समय भी खंभात में पारसी गृहस्थ रहते थे ।

पीते हैं । मगर सर्दी लगने के भय से नहीं बल्के इस हेतु से कि पानी में जीव होते हैं, इसलिए उबाले बगेर पानी पीने से उन जीवों का नाश होता है । इन जीवों को ईश्वर ने बनाया है । और इसमें (उबाले बिना पानी पीने में) बहुत पाप है । मगर जब पानी उबाल लिया जाता है तो उसमें जीव नहीं रहते । और इसी हेतु से वे अपने हाथों में अमुक प्रकार की पीछियाँ (ओघे) रखते हैं । ये पीछियाँ उनकी डंडियों सहित रूई की (ऊन की) बनाई हुई पेन्सिलों के जैसी लगती हैं । वे इन पीछियों द्वारा (बैठने की) जगह अथवा उन स्थानों को साफ़ करते हैं जिन पर उन्हें चलना होता है । कारण,-ऐसा करने से कोई कोई जीव नहीं मरता । इस व्हेम के हेतु उनके बड़ों और गुरुजनों को कई बार मैंने ज़मीन साफ़ करते देखा है । उनके सर्वोपरि नायक के अधिकार में एक लाख मनुष्य होंगे । प्रति वर्ष इनमें का एक चुना जाता है । मैंने इनमें आठ नौ वरस की आयु के छोकरों को भी देखा है । वे देवों के समान लगते हैं । वे मुझे भारत के नहीं मगर युरोप के से लगते हैं । इतनी सी आयु में ही उनके मातापिता ने उन्हें इस धर्म के भेट कर दिया है ।”



“वे पृथ्वी को अनादि मानते हैं । वे कहते हैं कि इतने समय में (अनादिकाल में) उनके ईश्वर ने २३ पैगम्बर (तीर्थकर) भेजे और इस अन्तिम युग में एक और भेजा । इस तरह सब चौबीस हुए । इस चौबीसवें को हुए दो हजार बरस बीत गये हैं । उसी समय से अब तक दूसरे पैगम्बरों ने नहीं बनाये ऐसे ग्रंथ उनके पास हैं ।”

“फ़ादर जेवियर ने और मैंने इसके संबंध में उनसे बातचीत की और पूछा कि, क्या इस अन्तिम पैगम्बर के द्वारा ही तुम्हारा उद्घार होगा ?”

“उपर्युक्त बाबनशा हमारा दुभाषिया था । और उन्होंने हमसे कहा कि,-इस विषय में हम फिर वार्तालाप करेंगे । मगर हम दूसरे ही दिन वहाँ से रवाना हो गये इसलिए फिर से वहाँ न जा सके । उन्होंने तो आग्रहपूर्वक हमें बुलाया था ।”

## परिशिष्ट ( ज )

### अकबर के समय के सिक्के ।

जीवनोपयोगी वस्तुओं के व्यवहार के लिए प्रत्येक काल में और प्रत्येक देश में 'सिक्कों' का व्यवहार अवश्यमेव होता है । ये सिक्के दो प्रकार के होते हैं । एक मुहरवाले और दूसरे विना मुहर के । जो सिक्के मुहरवाले होते हैं उन पर उस समय के राजा का चित्र, राज्यचिह्न अथवा राजा का नाम और संवत ढाले हुए रहते हैं । और जो सिक्के बगेर मुहर के होते हैं उनका व्यवहार गिनती से होता है । जैसे,-बादाम कोडियाँ आदि । जो सिक्के मुहरवाले होते हैं उनके विशेष नाम होते हैं । जैसे,-वर्तमान में सोने के सिक्के को गिन्नी, चाँदी के सिक्के को रुपया और ताँबे के सिक्के को पैसा कहते हैं । इतिहासों से मालूम होता है कि, प्रायः इन्हीं तीन धातुओं के सिक्के हर समय व्यवहार में आये हैं । प्राचीन समय में शीशा (रांगा) और अन्यान्य धातुओं के सिक्के भी काम में आते थे; परन्तु गत तीन चारसौ बरसों में तो विशेष करके इन-सोना, चाँदी और पीतल-तीन धातुओं के ही सिक्के व्यवहार में आये हैं । हाँ, वज़न की कभी ज्यादती के कारण उनके नाम जुदा जुदा रखें गये हैं; परन्तु धातु तो ये तीन ही हैं ।

जिस समय के सिक्कों का वर्णन मैं करना चाहता हूँ उस समय के (अकबर के वक्त के) सिक्कों में भी ये ही तीन धातुएं काम में आई हैं; और वे भी खरी-बगेर मिलावट की ।

अकबर के समय में जो सिक्के चलते थे वे अनेक तरह के थे । अर्थात् व्यवहार की सरलता के लिए अकबर ने अपने समय के सिक्के अनेक भागों में विभक्त कर दिये थे । सबसे पहले हम उस समय के सोने के सिक्कों का उल्लेख करेंगे ।

## परिशिष्ट

'ए मॅन्युअल ऑफ मुसलमान न्युमिस्मेटिक्स' (A Manual of Musalman Numismatics) के पृ. १२० में लिखा गया है कि,-

"Also there are the large handsome gold pieces of 200, 100, 50 and 10 muhars of Akbar and his three successors, which were, no doubt, not for currency use exactly, but for presentation in the way of honour for the emperor or offered to the emperor or king for tribute or acknowledgement of fealty, nazarana as it is called.

अर्थात्-इसके सिवाय दूसरे बड़े सुंदर सोने के सिक्के थे । वे अकबर और उसके पीछे के तीन बादशाहों के थे । वे २००, १००, ५० और १० के थे । उन्हें अशरफीयां कहते थे । यह ठीक है कि ये अशरफीया चलनी सिक्के की तरह काम में नहीं आती थीं । वे सग्राट के सम्मानार्थ अथवा बादशाह को या राजा को कर देने में या नज़राना देने में काम आती थीं ।

अकबर के इन सोने के सिक्कों का वर्णन, 'आईन-इ-अकबरी' के प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवाद के पृ. २७ में इस तरह दिया गया है:-

(१) 'शाहन्शाह' इस नाम का एक गोल सोने का सिक्का था; जिसका वज़न १०१ तोला ९ माशा ६ सुख्ख था । उसका मूल्य एक सौ 'लालोजलाली' अशरफी-जिसका वर्णन आगे दिया गया है-होता था । इसके एक तरफ शाहन्शाह का नाम था और सिक्के के किनारे के पाँच भागों में इस अभिप्राय को बतानेवाले शब्द थे,-

"महान् सुल्तान प्रख्यात बादशाह, प्रभु उसके राज्य और हुक्मत की वृद्धि करे ।"

यह सिक्का आगे में ढाला गया था ।

इस सिक्के की दूसरी तरफ 'ला इलाहि-इल-अल्लाह मुहम्मद रसूल-अल्लाह' यह कलमा, तथा कुरान का एक वाक्य लिखा गया था; उसका अर्थ यह होता था,-

“परमात्मा जिस पर प्रसन्न होता है, उस पर अत्यंत दया करता है।”

इस सिक्के के चारों तरफ़ पहिले के चार ख़लीफ़ों के नाम भी लिखे गये थे। इस सिक्के की आकृति सबसे पहले मौलाना मक़सूद ने बनाई थी। उसके बाद मुल्लां अलीअहमद ने इसे सुधारा था।

एक तरफ़ इसमें इस अर्थवाले शब्द लिखे थे,-“ईश्वर के मार्ग में, अपने सहधर्मियों की सहायता के लिए जो सिक्का ख़र्च होता है वह सर्वोत्तम है।”

दूसरी तरफ़ लिखा था,-“महान् सुल्तान सुप्रसिद्ध ख़लीफ़ा, सर्वशक्तिमान उसके राज्य और हुकूमत की वृद्धि करे, तथा उसकी न्यायपरायणता और दयालुता को अमर रखें।”

कहा जाता है कि, पीछे से इन पर से उपर्युक्त सभी शब्द निकालकर, मुल्लां अलीअहमद ने शेष फैज़ी की दो रुबायात लिखी थीं।

एक तरफ़ की रुबाई का अर्थ होता है,-

“सात समुद्रों में जो मोती होते हैं वे सूर्य के प्रभाव ही से होते हैं; काले पर्वतों में जो रत्न होते हैं उनका कारण भी सूर्य ही का प्रकाश है। कानों में से जो सोना निकलता है वह भी सूर्य के मंगलकारी प्रकाश का ही प्रताप है। वही सोना अकबर की मुहर से उत्तमता को प्राप्त होता है।”

बीच में ‘अल्लाहो अकबर’ और ‘जल्लेजलालहू’ शब्द थे।

दूसरी तरफ़ की रुबाई का अर्थ होता है,-

“यह सिक्का आशा का अलंकार है। इसकी मुहर अमर है। सिक्के का नाम अमर्त्य है और मंगलसूचक चिह्न की भाँति सूर्य ने प्रत्येक समय में उस पर अपना प्रकाश डाला है।”

बीच में इलाही संवत् लिखा गया था।

(२) दूसरा सोने का सिक्का उपर्युक्त प्रकार ही की आकृति और अक्षरवाला था। वजन में फ़र्क था। इसका वज़न ९१ तोला ८ माशे था। उसका मूल्य सौ गोल अशरफियाँ था। इन गोल अशरफियों का वज़न प्रत्येक का ११ माशे था।

(३) तीसरा रहस नाम का सिक्का था। यह सिक्का भी दो तरह का था। एक का वज़न शाहन्शाह नाम के सिक्के से आधा था और दूसरे का वज़न दूसरे नंबर के सिक्के से आधा था। यह सिक्का कई बार चौरस भी ढाला जाता था। इसके एक तरफ़ शाहन्शाह सिक्के के जैसी ही आकृति थी और दूसरी तरफ़ फैज़ी की रुबाई लिखी थी। उसका अर्थ यह होता है,-

“शाही खजाने का प्रचलित सिक्का शुभ भाग्य के ग्रह-युक्त है। हे सूर्य ! इस सिक्के को वृद्धि कर; क्योंकि हर समय अकबर की मुहर से यह सिक्का उत्तमता को प्राप्त हुआ है।”

(४) चौथा आत्मह नाम का सिक्का प्रथम शाहन्शाह नामक सिक्के से चोथाई था। उसकी आकृति चौरस और गोल थी। इनमें से कइयों पर तो शाहन्शाह नामक सिक्के के समान ही अक्षर लिखे गये थे, और कइयों पर फैज़ी की रुबाई दी गई थी। उसका अर्थ यह होता है : -

“यह सिक्का भाग्यशाली पुरुष के हाथ को सुशोभित करे; नौ स्वर्गों और सात ग्रहों का अलंकार बने; यह सिक्का सोने का है इसलिए कार्य भी इसके द्वारा सुनहरी ही हों; (और) यह सिक्का बादशाह अकबर की कीर्ति को हमेशा कायम रखें।”

दूसरी तरफ रहस नामक सिक्केवाली रुबाई ही लिखी गई थी।

(५) पाँचवा विन्सत नामक सिक्का था। उसकी आकृति आत्मह नामक दोनों सिक्कों की सी थी। इसका मूल्य शाहन्शाह नामक सिक्के का  $\frac{1}{5}$  था। ऐसे ही दूसरे भी कई सिक्के थे जिनका मूल्य शाहन्शाह सिक्के का  $\frac{1}{6}$ ,  $\frac{1}{10}$  और  $\frac{1}{5}$  जितना था।

(६) छठा चुगुल (जुगुल) नाम का सिक्का था वह शाहन्शाह सिक्के के पचासवें भाग जितना था। उसका मूल्य दो अशरफियाँ थी।

(७) सातवाँ सिक्का लालेजलाली नाम का था। उसकी आकृति गोल थी। मूल्य दो अशरफियाँ था। उसके एक तरफ़ 'अल्लाहो अकबर' और दूसरी तरफ़ 'यामुझनु' शब्द थे।

(८) आठवीं आफ़ताबी नाम का सिक्का था। वह गोल था। उसका वज्ञन १ तो. २ मा. ४॥। सुख्ख था। मूल्य बारह रुपये था। उसके एक तरफ़ 'अल्लाहो अकबर जल्जलालहू' और दूसरी तरफ़ इलाही संवत् तथा टकसाल का नाम था।

(९) नववाँ सिक्का इलाही नाम का था। उसकी आकृति गोल थी और वज्ञन १२ मासा १॥। सुख्ख था। उस पर मुहर आफ़ताबी सिक्के के समान ही थी। उसका मूल्य दश रुपये था।

(१०) दसवाँ लालेजलाली नाम का चौकोर सिक्का था। उसका वज्ञन और मूल्य इलाही सिक्के जितना ही था। उसके एक तरफ़ 'अल्लाहो अकबर' और दूसरी तरफ़ 'जल्जलालहू' शब्द लिखे थे।

(११) अदलगुत्क नामक ग्यारहवाँ सिक्का था। उसका वज्ञन ११ माशे और मूल्य ९ रु. था। उसके एक तरफ़ 'अल्लाहो अकबर' और दूसरी तरफ़ 'यामुझनु' शब्द थे।

(१२) बारहवाँ सिक्का गोल मुहर था। उसका वज्ञन और मूल्य अदलगुत्क सिक्के के समान थे। उसकी मुहर दूसरी तरह की थी।

(१३) तेरहवाँ मिहराबी नाम का सिक्का था। इसका वज्ञन, मूल्य और मुहर गोल अशरफ़ी के समान थे।

(१४) मुईनी सिक्का चौदहवाँ था। उसकी आकृति चोरस गोल थी। वज्ञन और मूल्य लालेजलाली और गोलमुहर जितना ही था। उस पर यामुझनु नाम की छाप थी।

(१५) चहार गोशह नामक पन्द्रहवाँ सिक्का था। उसकी मुहर और वज्ञन आफ़ताबी सिक्के के समान थी।

(१६) सोलहवाँ गिर्द नाम का सिक्का था। वह इलाही नामक सिक्के से आधा था। मुहर भी उसके समान ही थी।

(१७) सत्रहवाँ धन (दहन) नाम का सिक्का था। वह लालेजलाली से आधा था।

(१८) सलीमी नामक अठारहवाँ सिक्का था। यह अदलगुत्क से आधा था।

(१९) उन्नीसवाँ रबी नामक सिक्का था। वह आफ़ताबी सिक्के से चौथाई था।

(२०) बीसवाँ मन नामक सिक्का इलाही और जलाली के चौथे भाग जितना था।

(२१) इक्कीसवाँ आधासलीमी सिक्का अदलगुत्क का चौथा भाग था।

(२२) बाईसवाँ पंज नामक सिक्का इलाही के पाँचवें भाग जितना था।

(२३) तेर्इसवाँ पंदो नामक सिक्का था। वह लालेजलाली का पाँचवाँ भाग था। उसके एक तरफ़ 'कमल' और दूसरी तरफ़ 'गुलाब' बनाया गया था।

(२४) चौबीसवाँ समनी अथवा अष्टसिद्ध नामक सिक्का था । वह इलाही सिक्के के बत्तीसवें भाग जितना था । मुहर उस पर कला के जैसी थी ।

इस तरह अकबर के छब्बीस सिक्के स्वर्ण के थे । अबुल्फ़ज़्ल लिखता है कि,- “इनमें से लालेजलाली, धन (दहन) और मन नाम के तीन सिक्के तो हरेक महीने तक निरंतर शाही टकसाल में ढाले जाते थे । दूसरे सिक्के, जब ख़ास हुक्म मिलता था तभी ढलते थे ।” इस कथन से यह अनुमान सहजी में हो सकता है कि,-उपर्युक्त छब्बीस सिक्कों में से ये तीन (जालेजलाली, धन और मन) सिक्के व्यवहार में आते थे । ई. स. १६७३ में मुद्रित ‘डिस्क्रिप्शन ऑफ़ एशिया’ के पृ. १६३ पर (Description of Asia by Ogilby Page 163) लिखा है कि,-

“ऊपर जिस अशरफ़ी के सिक्कों का उल्लेख किया गया है उसे ‘ज़ेरेफ़न अकबर’ (?) भी कहते थे । क्योंकि अकबर ही ने सबसे पहले यह सिक्का चलाया था । और इसका मूल्य १३॥ रु. था । इसी तरह चांदी के सिक्के भी अनेक चलते थे । उनमें से निम्नलिखित को अबुल्फ़ज़्ल ने मुख्य बताया है ।”

(१) रूपया-यह गोल था । वजन ११॥ माशा था । सबसे पहले शेरशाह के समय में रूपये का उपयोग होने लगा था । उसके एक तरफ़ ‘अल्लाहो अकबर जल्लजलालहू’ शब्द थे और दूसरी तरफ़ वर्ष लिखा गया था । उसका मूल्य<sup>१</sup> लगभग ४० दाम था ।

(२) जलालह-इसकी आकृति चौरस थी । इसकी कीमत और मुहर रूपये के समान ही थी ।

(३) दर्ब-यह जलालह से आधा था ।

१. दि इंग्लिश फेवरटीज इन इंडिया (ई. स. १६१८-१६२१) के पृष्ठ २६९ में रूपये की कीमत ८० पैसे बताई गई है ।

- (४) चर्न-यह जलालह का चौथाई था ।
- (५) पन्दड-यह जलालह के पाँचवें भाग जितना था ।
- (६) अष्ट-यह जलालह के आठवें भाग जितना था ।
- (७) दसा-यह जलालह का सोलहवाँ भाग था ।
- (८) कला-यह जलालह का सोलहवाँ भाग था ।
- (९) सूकी-यह जलालह का बीसवाँ भाग था ।

अबुल्फ़ज़्ल कहता है कि,-“जैसे जलालह नामक चौरस आकृतिवाले सिक्के के जुदा जुदा हिस्से किये गये थे उसी तरह गोल सिक्के के-जिसका नाम रूपया दिया गया था-भी कई हिस्से किये गये थे । मगर इन भागों की आकृति कुछ भिन्न थी ।”

पृ. ३८८-८९ में लिखता है कि,-“अकबर के रूपये का मूल्य यदि अभी के हिसाब से लगावें तो २ शि. ३ पेन्स के लगभग होता है ।”

‘इंग्लिश फेवरटीज इन इंडिया’ नाम के ग्रंथ के (ई. स. १६५१ से १६५४) पृ. ३८ में भी अकबर के रु. की कीमत उतनी ही अर्थात् २ शि. ३ पेन्स बताई गई है ।

‘डिस्क्रिप्शन ऑफ़ एशिया’ के पृ. १६३ में लिखा गया है,-“रूपया, रुक्की, रुपया, अथवा शाहजहानी रुपया के नाम से पहचाना जाता था । उसका मूल्य २ शि. २ पेन्स के बराबर था और वह खरी चाँदी का बनता था । यह सिक्का सारे गुजरात में चलता था । इसी लेखक ने लिखा है कि एक रुपया ५३-५४ पैसे का होता था ।”

मि. टेवरनियर ने ‘ट्रेवल्स इन इंडिया’ के प्रथम भाग के १३-१४ वें पृष्ठ में लिखा है कि,-“मेरी (भारत की) अन्तिम यात्रा के समय सूरत में १ रु. के ४९ पैसे मिलते थे । कई बार ५० भी मिलते थे । कभी कभी

४६ का भाव भी हो जाता था।" इसी पुस्तक के ४१३ वें पृष्ठ में उसने लिखा है कि,-"आगे में एक रूपये के ५५-५६ पैसे भी मिलते थे।"

'कलेक्शन ऑफ़ वॉयेजेज़ एण्ड ट्रेवल्स' के चौथे वॉ. के पृ. २४१ में लिखा है कि,-"हिन्दुस्थान में जो सिक्के ढलते थे उनमें चाँदी के रूपये, अठनियाँ और चौअन्नियाँ भी थीं।"

यह कथन भी उपर्युक्त सिक्कों के जो भेद बताये गये हैं उन्हें सही प्रमाणित करता है। आगे चलकर इस लेखक ने यह भी लिखा है कि,-"एक रूपये का मूल्य ५४ पैसा होता था। यह बात ऊपर बताई हुई रूपये की कीमत ही को सही साबित करती है।"

अब अकबर के ताँबे के सिक्कों का उल्लेख किया जायेगा।

अबुल्फ़ज़्ज़ल ने ताँबे के चार सिक्के बताये हैं। वे ये हैं।

(१) दाम-इसका वज्ञन ५ टाँक था। पाँच टाँक एक तो. ८ माशा और ७ सुर्ख़ के बराबर होता था। दाम एक रूपये का चालीसवाँ भाग था। अर्थात् एक रूपये के चालीस दाम मिलते थे। यद्यपि यह सिक्का अकबर के पहले पैसा और बहलोली कहलाता था; मगर अकबर के समय में तो दाम के नाम ही से प्रसिद्ध था। इस सिक्के में एक तरफ़ टकसाल का नाम और दूसरी तरफ़ संवत् रहता था। अबुल्फ़ज़्ज़ल कहता है कि,-"गीनती की सरलता के लिए एक दाम के २५ भाग किये गये थे। उसका प्रत्येक भाग जेतल कहलाता था। इस काल्पनिक विभाग का उपयोग केवल हिसाबी ही करते थे।"

(२) अधेला-यह आधे दाम जितना था।

(३) पाउला-दाम का चौथाई भाग।

(४) दमड़ी-दाम का आठवाँ भाग।

उपर्युक्त प्रकार से सोना चाँदी और ताँबे के सिक्के अकबर के समय में प्रचलित थे। इनके अलावा थोड़े दूसरे सिक्के भी चलते थे। यह बात कुछ लेखकों ने लिखी है।

१ महमूदी-यह चाँदी का सिक्का था। इसकी कीमत एक शिलिंग के लगभग थी। अथवा २५-२६ पैसे एक महमूदी के मिलते थे। कहा जाता है कि,-"शायद यह महमूदी गुजरात के राजा महम्मद बेगड़ा (ई.स. १४५९ से १५११) के नाम से प्रचलित हुई थी।" मेडेल्स्लो नाम का मुसाफ़िर लिखता है कि,-"हलके से हलके धातु के भेल से सूरत में यह महमूदी ढाली जाती थी। उसकी कीमत १२ पेन्स (१ शि.) थी और वह सूरत, बड़ौदा, भरूच, खंभात और उसके आसपास के भागों में ही चलती थी।"

'टेवरनियर्स ट्रेवल्स इन इंडिया' के वॉ. १ लेके पृ. १३-१४ में एक महमूदी की ठीक ठीक कीमत बीस पैसे बताई गई है; और ऊपर तो २५-२६ पैसे बताई गई है। इसी तरह 'द इंग्लिश फ़ेक्टरीज इन इंडिया' (ई.स. १६१८-१६२१) के पृ. २६९ में एक महमूदी का मूल्य ३२ पैसे लिखा है। इससे मालूम होता है कि, उसका मूल्य बदलता रहा होगा। अकबर के समय में महमूदी की कीमत कितनी थी सो ठीक ठीक मालूम नहीं हुई। मगर, अनुमान से कहा जा सकता है, कि उसके समय में भी कीमत बदलती रही होगी।

इसके अलावा एक लारी नामक सिक्का चलता था। वह परशिअन सिक्का था। और खरे सोने का बना हुआ था। उसकी आकृति लंब-गोल और कीमत १ शिलिंग ६ पेन्स थी।

१. देखो-नासिक ज़िले का गेजेटिअर, पृ. ४५९ का तीसरा नोट।

२. देखो-'मीराते अहमदी' (बर्ड की) पृ. १२६-१२७ था 'जर्नल ऑफ़ द बॉम्बे ब्रांच' द रॉयल ए. सोसायटी ई.स. १९०७ प. २४७.

३. देखो-डिस्क्रिप्शन ऑफ़ एशिया पृ. १७३

‘दि इंगिलश फेक्टरीज़ इन इंडिया’ (ई.स. १६१८ से १६२१) पृ. २२७ के नोट में इसकी कीमत लगभग १ शिलिंग लिखी है।

एक टंका नामक ताँबा का सिक्का था। जैनग्रंथों में इसका बहुत उल्लेख आता है। विन्सेंट ए. स्मिथ ने ‘इंडिअन एण्टिकवेरी’ वॉ. ४८, जुलाई सन् १९१९ के अंक के पृ. १३२ में लिखा है कि,—“टंका और दाम दोनों एक ही हैं।” मि. स्मिथ का यह कथन छोटे टंकों के लागू पड़ता है। क्योंकि, कॅटलॉग ऑफ़ दि इंडिया कोइंस इन द ब्रिटिश म्यूज़ियम के पृ. xc में दिये हुए सिक्कों के वर्णन में दो प्रकार के टंका बताये गये हैं। छोटे और बड़े। बड़े टंके का वज्ञन बताया गया है ६४० ग्रेन और छोटे का ३२० ग्रेन। बड़े का मूल्य दो दाम बताया गया है और छोटे का एक। अतएव स्मिथ का मत छोटे टंके के साथ लागू होता है। मि. बर्ड की ‘मीराते अहमदी’ के पृ. १८ में १०० टंकों के बराबर ४० दाम (१ रुपया) बताये गये हैं। इससे भी उपर्युक्त कथन ही की पुष्टि होती है।

इसके अलावा और भी कई ताँबे के सिक्के चलते थे। वे फलूप, निस्फ़ी, एकटंकी, दोटंकी, चारटंकी आदि के नाम से ख्यात थे।

अकबर के समय में जैसा कि ऊपर उल्लेख हुआ है, मुहरवाले सिक्कों का प्रचार था। इसी तरह बगैर मुहर की भी कई चीजें नाणा-मुद्रा की तरह काम में आती थीं। उनका हिसाब गिनती से होता था। ऐसी चीज़ों में (कड़वी) बादामें और कोड़ियाँ मुख्य थीं। टेवरनियर ने लिखा है कि,—

“मुगलों के राज्य में कड़वी बादामें और कोड़ियाँ भी चलती थीं। गुजरात प्रान्त में छोटे लेनदेन के लिए ईरान से आई हुई कड़वी बादामें चलती थीं। एक पैसे की ३५ से ४० तक बादामें मिलती थीं।”

१. देखो—‘टेवरनियर्स ट्रेवल्स इन इंडिया’ वॉ. १ ला. पृ. १३-१४.

इसी विद्वानने आगे लिखा है कि,—

“समुद्र के किनारे पर एक पैसे की ८० कोड़ियाँ मिलती थीं। जैसे समुद्र से दूर जाते थे वैसे ही वैसे कोड़ियाँ भी कम मिलती थीं। जैसे, -आगे में १ पैसे की ५०-५५ मिलती थीं।”

‘डिस्क्रिप्शन ऑफ़ एशिया’ के पृ. १६३ में भी बादामों का भाव १ पैसे की ३६ और कोड़ियों का भाव १ पैसे की ८० बताया गया है।

ऊपर के वृत्तान्त से अकबर के समय की प्रचलित मुद्रा का कोष्टक इस प्रकार बताया जा सकता है,—

३५ से ४० बादा में अथवा ८० कोड़ियाँ	= १ पैसा।
४५ से ५६ पैसे अथवा ४० दाम	= १ रुपया।
१३॥ से १४ रुपया	= १ अशरफ़ी।

## पूर्ति

इस पुस्तक में लिखी गई कुछ बातों का विशेष स्पष्टीकरण इस पूर्ति में किया जाता है।

### अभिरामाबाद

पृ. १०३ में अभिरामाबाद पर एक नोट लिखा गया है कि, अभिरामाबाद, अलाहाबाद नहीं था मगर फ़तेहपुरसीकरी से छः कोस पर बसे हुए एक गाँव का नाम था। इस विषय में। 'मंडीज ट्रेवल्स' (Mundy's Travels) जो सररिच्चर्ड सी. टेम्पल द्वारा प्रकाशित हुआ है- विशेष प्रकाश डालता है। इस पुस्तक से मालूम होता है कि अभिरामाबाद एक अच्छा क़स्बा था। वह 'बयाना' से उत्तर दिशा में दो कोस के फ़सले पर था। इसको 'इब्राहीमाबाद' भी कहते थे। यहाँ एक बहुत ही सुंदर बावड़ी थी। यह बावड़ी अब भी मौजूद है और 'झालर बावड़ी' के नाम से पहचानी जाती है। इस पर के एक लेखसे मालूम होता है कि, अलाउद्दीन खिलजी के बज़ीर काफूर ने इसको ई. स. १३१८ में बँधाया था। देखो-(Cunningham Archaeological Survey of India Report Vol. XX 69-70 Also Mundy P. 101)

### विजरेल ।

पृ. २५२ में फिरंगीयों के नायक का नाम विजरेल दिया गया है। विजरेल यह पोर्टुगीज शब्द Vice-rei on Viso-rei का अपभ्रंश रूप मालूम होता है। अंग्रेजी में उसे 'वॉइसराय' कहते हैं। देखो-'डिक्शनरी ऑफ दि इंग्लिश-पोर्टुगीज लेंगवेज' लेखक; एन्थनी, वीरा, पे. ६९४. (Dictionary of the English Portuguese Language by Anthony, Yieyra Page 694.)